विवेक शिखा

(नियम ८ देखिए)

विवेक शिखा

प्रकाशक का घोषणा पत्र

पत्रिका का नाम	: विवेक शिखा
आवर्तता	: मासिक
प्रकाशन का स्थान	: रामकृष्ण निलयम् जयप्रकाश नगर छपरा (बिहार)
पत्रिका के स्वामी का नाम	: श्रीमती गंगा देवी
क्या भारतीय नागरिक हैं	: हाँ
पता—	: रामकृष्ण निलयम् जयप्रकाश नगर छपरा (बिहार)
सम्पादक का नाम	: डॉ० केदारनाथ [illegible]
क्या भारतीय नागरिक हैं	: हाँ
पता —	: रामकृष्ण निलयम् जयप्रकाश नगर छपरा (बिहार)
मुद्रक का नाम	: श्रीकान्त लाभ
क्या भारतीय नागरिक हैं	: हाँ
पता—	: जनता प्रेस नया टोला पटना—४ (बिहार)

मैं गंगा देवी एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ कि ऊपर दी गयी जानकारी मेरी दृष्टि में सही है।

ह०/ श्रीमती गंगा देवी
प्रकाशक

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्री रामकृष्ण ने कहा है		१
२. भजन		२
३. कितना अकेला आज मैं !	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. अपने देश वासियों के प्रति	(स्वामी विवेकानन्द)	५
५. रामकृष्ण विवेकानन्द भावान्दोलन तथा स्वशासित केन्द्रों का महत्व	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज	७
६. अंदू भट्ट विद्वान जी (संस्मरण)	श्रीमत् स्वामी असङ्गानन्द	११
७. अवतार	स्वामी वेदान्तानन्द	१३
८. गीता का धार्मिक प्रयोजन : मोहनाश	स्वामी आत्मानन्द	१८
९. हिन्दू धर्म की विशेषताएँ (१)	स्वामी सत्यरूपानन्द	२१
१०. साधना के अन्तराय	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	२५
११. साधना सूत्र	सुकसुक	१६
१२. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—७ मार्च—१९८८ अंक—३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मन में विवेक-वैराग्य के रहे बिना शास्त्रग्रन्थ पढ़ना वृथा है। विवेक-वैराग्य के सिवा आध्यात्मिक उन्नति असम्भव है।

(२)

कागज पर अगर तेल लगा हो तो उस पर लिखा नहीं जा सकता, इसी तरह, जीव के मन में यदि कामिनी-काँचन रूपी तेल लग जाए तो उसके द्वारा साधना नहीं हो सकती। परन्तु, फिर जिस प्रकार उस तेल लगे हुए कागज को खड़िये से घिस लेने पर उस पर लिखा जा सकता है, उसी प्रकार कामिनी-काँचन रूपी तेल लगे हुए मन को त्यागरूपी खड़िये से घिस लिया जाए तो उसके द्वारा साधना हो सकती है।

(३)

यदि तुम्हारे भीतर ईश्वर के प्रति ठीक-ठीक अनुराग हो, उन्हें जानने की स्पृहा उत्पन्न हो तो अवश्य ही वे तुम्हें सद्गुरु से मिला देंगे। साधक को गुरु के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

(४)

एक बार दीपक को देखने पर पतंग फिर अँधेरे में नहीं जाता; चींटी गुड़ में लिपटकर प्राण खो देती है, पर उसे नहीं छोड़ती। इसी तरह भक्त भी ईश्वर के लिए प्राणों की बाजी लगा देता है, परन्तु दूसरा कुछ नहीं चाहता।

(५)

पाप और पारा—दोनों को पचाना कठिन है।

भजन

श्री पूनमचन्द सोमर
बीकानेर

(राग-बहार, विहाग)

रामकृष्ण गुण गाऊँ निशिदिन ।
एक रूप बहुरूप समन्वित,
देख देख सुख पाऊँ निशिदिन ॥
रामकृष्ण गुण गाऊँ निशिदिन ।

ईशा, बुद्ध, गौरी, शंकर को,
परमहंस में पाऊँ निशिदिन ।
रामकृष्ण गुण गाऊँ निशिदिन ॥

हर-गौरी और राम-श्याम को
एक रूप में ध्याऊँ निशिदिन ।
रामकृष्ण गुण गाऊँ निशिदिन ॥

चरण-कमल का लिया आसरा
परम अभय पद पाऊँ निशिदिन ।
रामकृष्ण गुण गाऊँ निशिदिन ॥

करुणा-सिन्धु भगवान दयानिधि
शुद्धाभक्ति चित-चाऊँ निशिदिन ।
रामकृष्ण गुण गाऊँ निशिदिन ॥

□

संम्पादकीय सम्बोधन

कितना अकेला आज मैं।

प्रिय आत्मस्वरूप मित्रो,

एक कविता पढ़ी थी। पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार थीं :

दुर्भाग्य से लूटा हुआ, घरबार से छूटा हुआ
दुःख दर्द से टूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं !

जब मनुष्य अपने को दुर्भाग्य के हाथों लुटा हुआ, अपने परिवार से अलग-थलग पड़ा हुआ और दुःख दर्दों से टूटा हुआ अनुभव करता है तब उसे लगता है कि वह नितान्त अकेला प्राणी है इस संसार में। उसका कोई अपना नहीं जो उसके दुःख दर्दों में उसका साथ दे सके। उसे लगता है, कितना अकेला है वह ! और उसका अकेलापन उसे सालने लगता है, मथने लगता है।

ऐसा नहीं है कि यह अकेलापन केवल उस एक कवि की समस्या है। आज के इस युग की, इस भौतिकवादी, भोगवादी, सुखवादी युग की यह एकाकीपन की त्रासदी सबको सालने लगी है। इस वैज्ञानिक औद्योगिक युग ने ऐकान्तिक सुख-भोग की जो दृष्टि हमें दी है, जो सुविधा हमें प्रदान की है उसकी स्वाभाविक परिणति अकेलापन की, परायेपन (Alieanation) की प्रतीति है।

हम अकेले कभी होते नहीं। हम होते तो हैं सदैव अपने समाज में, किन्तु हमें लगता है, हम सब से कटे हैं, सब से विलग हैं। कोई हमारा नहीं। मेरा दुःख-दर्द मेरा निजी दुःख-दर्द है। इसका कोई सहभागी नहीं। मैं अभिशप्त हूँ अपना सुख-दुःख एकाकी भोगने के लिए। सब के बीच भी जैसे मैं पराया हूँ, परदेशी हूँ, अकेला, बिल्कुल अकेला हूँ। ऐसा लगता है।

लेकिन हम कभी अकेले नहीं होते। अकेलापन एक भाव है। जब हम संसार के सुखों को अकेले भोगने को आतुर होते हैं, सब कुछ अपने लिए, केवल अपने लिए चाहते हैं तो यह दृष्टि हमें औरों से पृथक् कर देती है। धन मुझे मिलना चाहिए। कार, फ्रिज, टी० वी० वीडियो मुझे होने चाहिए। सुन्दरियों का प्रेम मुझे उपलब्ध होना चाहिए। मुझे, मुझे, मुझे। मैं, मैं, मैं। केवल यह 'मैं' पन ही हमें संकीर्ण, संकुचित और स्वार्थी बनाता है। और यही हमारे दुःखों का कारण है। कामायनी में श्रद्धा मनु से कहती है—

सब कुछ अपने में भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है, सबका नाश करेगा।
औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।

औरों के सुख में सुखी होने की कला नहीं जानने से ही हम दुःखी होते हैं, हम अकेलापन का अनुभव करते हैं। अपनी चेतना का यदि हम विस्तार करना सीख लें, यदि हम यह जान लें कि विश्व के समस्त प्राणी हमारे ही स्वरूप हैं तो फिर अकेलेपन की समस्या खड़ी नहीं होती। स्वामी विवेकानन्द ने इसी से कहा था – 'विस्तार ही जीवन है, संकोच ही मृत्यु।'

अकेलेपन से उबरने का यह एक सहज उपाय है कि हम अपना विस्तार करें—औरों में अपने

को देखें और हर पराये जगनेवाले के प्रति सहानुभूतिशील हों। अँग्रेजी कवि जॉन ऑक्नेहॅम (John Oxenham) ने एक रास्ता सुझाया है अकेलेपन से उबरने का—

Share the little with another !
Stretch a hand to one unfriended ...

दूसरों के साथ किंचित् सहभागिता करो, जो मित्रताहीन हो गये हैं, उनके प्रति मैत्री का हाथ बढ़ाओ। तुम फिर अकेले नहीं रहोगे।

हम प्रेम माँगते हैं, धन माँगते हैं, नाम, पद-प्रतिष्ठा, यश, मैत्री, सुख माँगते हैं। हमारी हालत माँगनेवाले की, एक भिखारी की हो गयी है। भिखारी को सुख नहीं मिलता। हम माँगें नहीं, दें। हमारी स्थिति भिखारी की नहीं, दाता की होनी चाहिए। प्रेम माँगो नहीं, दो। स्वामीजी कहा करते थे—Try to love anybody and everybody. हर किसी को प्यार करना सीखो। वे कहते थे—"प्रेम ही विजय पायगा। क्या तुम अपने समीप के लोगों को प्यार करते हो? ईश्वर को ढूँढ़ने कहाँ जाओगे? क्या ये गरीब, दुःखी, दुर्बल प्राणी ईश्वर नहीं हैं? पहले उनकी उपासना क्यों नहीं करते? गंगा के किनारे कुआँ खोदने क्यों जाते हो? प्रेम की महाशक्ति में विश्वास करो। .....जब समाज के लिए तुम अपने सुख की समस्त कामनाओं का त्याग कर सकोगे, तब तुम बुद्ध हो जाओगे, तब तुम मुक्त हो जाओगे।"

जो केवल अपनी ओर देखता है, वह अकेला है। जो सबकी ओर देखता है और सब में अपने को देखता है, वह कभी अकेला नहीं होता। श्रीरामकृष्ण की चेतना सब में व्याप्त हो गयी थी। इसलिए एक दिन जब किसी मछुआरे ने दूसरे मछुआरे की पीठ पर एक तमाचा लगा दिया तो उस तमाचे की छाप श्रीरामकृष्ण की पीठ पर उभर गयी और वे दर्द से चीख उठे। यह है आत्मविस्तार; यह है समस्त विश्व के साथ एकता की, एकात्मता की अनुभूति—आत्मवत् सर्वभूतेषु यह पश्यति स पंडित।

यद्यपि श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर के एक कमरे में अकेले रहते थे। लेकिन वे कभी अकेले नहीं थे और न एकाकीपन उन्हें सालता था, क्योंकि वे समस्त जीवों के साथ तदाकार हो गये थे। इसी से वे एक फूल भी नहीं तोड़ पाते थे और घास पर चलने में भी उन्हें संकोच होता था। अकेला रहकर भी यदि हम सबके साथ अपने को जोड़ सकें, सब के सुख से सुखी और सब के दुःख से दुःखी होना सीख लें तो हमारा एकाकीपन दूर हो जाय। तब हम अपने लिए जिएँगे ही नहीं। बाहर से हम अकेले दीख पड़ सकते हैं, कोई हमारा सगा साथी हमारे पास नहीं हो सकता है, फिर भी हम अकेलेपन की त्रासदी से मुक्त एक आनन्द में, अखण्ड आनन्द में रह सकते हैं।—**सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता। परो ददातीति कुबुद्धिरेषा॥**—सुख और दुःख का देनेवाला और कोई नहीं, हम खुद हैं। कोई दूसरा व्यक्ति हमें सुख देता है, ऐसा सोचना कुबुद्धि है। श्री माँ सारदा कहा करती थीं—"संसार में कोई तुम्हारा पराया नहीं है। यदि शान्ति चाहते हो तो सबको अपना बनाना सीखो" हम अकेलापन भोगने के लिए पैदा नहीं हुए हैं। हमारा जन्म आनन्द के लिए हुआ है। यह कथन कितना सही है—**आनन्द आमार जाति, उत्सव आमार गोत्र।** वस्तुतः आनन्द ही हमारी जाति है, उत्सव ही हमारा गोत्र। भगवान श्रीरामकृष्ण से मेरी प्रार्थना है कि वे जीवन के इस शाश्वत उत्सव और अखण्ड आनन्द में निवास करने की कला हमें प्रदान करने की कृपा करें। जय श्रीरामकृष्ण। जय स्वामीजी।

अपने देशवासियों के प्रति

—स्वामी विवेकानन्द

एक ओर नया भारत कहता है कि हमको पति-पत्नी चुनने में पूरी स्वतंत्रता चाहिए, क्योंकि जिस विवाह पर हमारे भविष्य जीवन का सारा सुख-दुःख निर्भर है, उसका हम अपनी इच्छा से चुनाव करेंगे। दूसरी ओर प्राचीन भारत की आज्ञा होती है कि विवाह इन्द्रिय-सुख के लिए नहीं, वरन् सन्तानोत्पत्ति के लिए है। इस देश की यही धारणा है। सन्तान उत्पन्न करके समाज के भावी हानि-लाभ के तुम कारण हो, इसलिए जिस प्रणाली से विवाह करने में समाज का सबसे अधिक कल्याण होना संभव है, वही प्रणाली समाज में प्रचलित है। तुम समाज के सुख के लिए अपने सुख-भोग की इच्छा त्यागो।

एक ओर नया भारत कहता है कि पाश्चात्य भाव, भाषा, खान-पान और वेश-भूषा का अवलम्बन करने से ही हम लोग पाश्चात्य जातियों की भाँति शक्तिमान हो सकेंगे। दूसरी ओर प्राचीन भारत कहता है कि मूर्ख! नकल करने से भी कहीं दूसरों का भाव अपना हुआ है? बिना उपार्जन किये कोई वस्तु अपनी नहीं होती। क्या सिंह की खाल पहनकर गधा कहीं सिंह हुआ है?

एक ओर नवीन भारत कहता है कि पाश्चात्य जातियाँ जो कुछ कर रही हैं, वही अच्छा है। अच्छा नहीं है, तो वे ऐसे बलवान कैसे हुए? दूसरी ओर प्राचीन भारत कहता है कि बिजली की चमक तो खूब होती है, पर क्षणिक होती है बालक! तुम्हारी आँखें चौंधियाँ रही हैं, सावधान!

तो क्या हमें पाश्चात्य जगत् से कुछ भी सीखने को नहीं है? क्या हमें चेष्टा या प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है? क्या हम सब प्रकार पूरे हैं? क्या हमारा समाज पूर्णतया निश्छिद्र है? नहीं, सीखने को बहुत कुछ है। प्रयत्न तो हमें जीवन भर करना चाहिए। प्रयत्न ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे, 'जब तक जिऊँ, तब तक सीखूँ।' जिस व्यक्ति या समाज को कुछ सीखना नहीं है, वह मृत्यु के मुँह में जा चुका। सीखने को तो है, परन्तु भय भी है।

एक कम बुद्धिवाला लड़का श्रीरामकृष्ण देव के सामने सदा शास्त्रों की निन्दा किया करता था। उसने एक बार गीता की बड़ी प्रशंसा की। इस पर श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, "किसी अंग्रेज विद्वान ने गीता की प्रशंसा की होगी। इसीलिए यह भी उसकी प्रशंसा कर रहा है।"

ऐ भारत! यही विकट भय का कारण है। हम लोगों में पाश्चात्य जातियों की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रबल होती जाती है कि भले-बुरे का निश्चय अब विचार-बुद्धि, शास्त्र या हिताहित ज्ञान से नहीं किया जाता। गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा करें, वही अच्छा है और वे जिसकी निन्दा करें, वही बुरा! अफसोस! इससे बढ़कर मूर्खता का परिचय और क्या होगा?

पाश्चात्य स्त्रियाँ स्वाधीन भाव से फिरती हैं, इसलिए वही चाल अच्छी है; वे अपने लिए वर आप चुन लेती हैं, इसलिए वही उन्नति का उच्चतम सोपान है; पाश्चात्य पुरुष हम लोगों की वेश-भूषा, खान-पान को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, इसलिए हमारी ये चीजें बहुत बुरी हैं, पाश्चात्य लोग मूर्त्ति-पूजा को खराब कहते हैं, तो वह भी बड़ी ही खराब होगी, क्यों न हो?

पाश्चात्य लोग एक ही देवता की पूजा को कल्याण-प्रद बताते हैं, इसलिए अपने देव-देवियों को गंगा में फेंक दो। पाश्चात्य लोग जाति-भेद को घृणित समझते हैं, इसलिए सब वर्णों को मिलाकर एक कर दो। पाश्चात्य लोग बाल्य विवाह को सब अनर्थों का कारण कहते हैं, इसलिए वह भी अवश्य ही बहुत खराब होगा।

यहाँ पर हम इस बात का विचार नहीं करते कि ये

प्रथाएँ चलनी चाहिए अथवा रुकनी चाहिए। परन्तु यदि पाश्चात्य लोगों की घृणा-दृष्टि के कारण ही हमारे रीति-रिवाज बुरे साबित होते हों, तो उसका प्रतिवाद अवश्य होना चाहिए।

वर्तमान लेखक को पाश्चात्य समाज का कुछ प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसीसे उसका विश्वास है कि पाश्चात्य समाज और भारत समाज की मूल गति और उद्देश्य में इतना अन्तर है कि पाश्चात्यों के अनुकरण पर गठित समाज इस देश में किसी काम का न होगा। जो लोग पाश्चात्य समाज में नहीं रहे हैं, और वहाँ की स्त्रियों की पवित्रता की रक्षा के लिए स्त्रियों और पुरुषों के आपस में मिलने के जो नियम और बाधाएँ प्रचलित हैं, उन्हें बिना जाने जो अपनी स्त्रियों को पुरुषों से बिना रोक-टोक के मिलने देते हैं, उन लोगों से हमारी रत्ती भर भी सहानुभूति नहीं है।

पाश्चात्य देशों में भी देखा है कि दुर्बल जातियों की सन्तान जब इंगलैंड में जन्म लेती है, तो अपने को वह स्पेनिश, पोर्तुगीज, युनानी आदि—जो वह हो—न बताकर अंग्रेज ही बताती हैं। बलवान की ओर सब कोई दौड़ता है। दुर्बल मात्र की यह इच्छा रहती है कि बड़े लोगों के गौरव की छटा उसके शरीर में कुछ लग जाय। भारतवासियों को जब मैं अंग्रेजी वेश-भूषा में देखता हूँ, तब समझता हूँ कि ये लोग शायद पददलित विद्याहीन दरिद्र भारतवासियों के साथ अपनी सजातीयता स्वीकार करने में लज्जित होते हैं। चौदह सौ वर्ष तक हिन्दुओं के रक्त से पलकर भी पारसी लोग अब 'नेटिव' नहीं हैं! जातिहीन और अपने को ब्राह्मण बताने वाली जातियों के जात्यभिमान के निकट बड़े-बड़े कुलीन ब्राह्मणों तक का जात्यभिमान कपूर की तरह उड़कर लुप्त हो जाता है। फिर पाश्चात्यों ने अब हमें यह भी सिखलाया है कि यह जो कमर में ही कपड़ा लपेटनेवाली मूर्ख नीच जाति है, वह अनार्य है; इसलिए ये लोग हमारे अपने नहीं हैं!!

ऐ भारत! क्या दूसरों की ही हाँ में हाँ मिलाकर, दूसरों की ही नकल कर, परमुखापेक्षी होकर इन दासों की सी दुर्बलता, इस घृणित, जघन्य निष्ठुरता से ही तुम बड़े बड़े अधिकार प्राप्त करोगे? क्या इसी लज्जास्पद कापुरुषता से तुम वीर भोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे? ऐ भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है; मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं; मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए—अपने व्यक्तिगत सुख के लिए—नहीं है; मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलि-स्वरूप रखे गये हो; मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट् महामाया की छाया मात्र है; मत भूलना कि नीच अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं। ऐ वीर! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं; तुम भी कटिमात्र वस्त्रावृत्त होकर गर्व से पुकारकर कहो कि भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं; भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरी शिशुसज्जा, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्द्धक्य की वाराणसी है। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है; और रात-दिन कहते रहो—'हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो; माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बनाओ'।[1]

[१. मूल बंगला में लिखित। विवेकानन्द साहित्य, नवम खंड, वर्तमान भारत, पृष्ठ २२५ से संगृहीत।]

□

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावान्दोलन तथा स्वशासित केन्द्रों का महत्व

— स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज
सहाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और मिशन

[श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज, उपाध्यक्ष श्री रामकृष्ण मठ और मिशन द्वारा राउरकेला आश्रम, उड़ीसा में दिनांक ७-११-१९८५ को दिया गया भाषण जो प्रबुद्ध भारत के सितम्बर, १९८७ में Ramakrishna Vivekananda Movement नाम से प्रकाशित हुआ था उसका यह हिन्दी रूपान्तर है।]

मैं इस आश्रम के प्रबन्धकों का पूर्णरूपेण धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ कि उन्होंने मुझे आमंत्रित कर आप सभी से मिलने का एक अवसर प्रदान किया है। पूर्व में दो ऐसे अवसर प्राप्त हुए किन्तु मुझे उन आमंत्रणों को अस्वीकार करना पड़ा। यह तीसरा अवसर है जब कि मैं श्री रामकृष्ण का अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने मुझे प्रेरणा दी कि मैं आपके समक्ष उपस्थित हो सकूँ। रामकृष्ण-विवेकानन्द की भाव-धारा, जो हमारे आध्यात्मिक पोषण का स्रोत है, से अनुप्राणित भक्तों के सहवास में रहने का यह शुभ अवसर है।

आज की संध्या-वार्ता का विषय है—रामकृष्ण-विवेकानन्द आन्दोलन तथा इस संदर्भ में स्वशासित केन्द्रों का महत्व। सर्वप्रथम हमें समझना चाहिए कि रामकृष्ण-विवेकानन्द आन्दोलन से हमारा तात्पर्य क्या है। "आन्दोलन" शब्द उपयुक्त नहीं है। आन्दोलन बहुत प्रकार के होते हैं। बहुधा हम राजनैतिक आन्दोलनों के विषय में सुनते हैं। किन्तु हमें राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। हमलोग स्वयं को राजनीति में लिप्त नहीं रखते। रामकृष्ण-विवेकानन्द के विचारों का प्रसार ही हमारा आन्दोलन है। यही मुख्य विषय है। सर्वप्रथम, हमें विचारों को प्रस्तुत करना है, तत्पश्चात उन विचारों को व्यवहार में अनुकरणयोग्य करने की दिशा में तत्परता लानी है। यही है तात्पर्य "आन्दोलन" शब्द का। इन दो व्यक्तित्वों को इस विचार से एक साथ रखा गया है कि ये पूर्णतया भिन्न व्यक्तित्व नहीं हैं। हमलोग समझ सकते हैं कि श्रीरामकृष्ण एक आध्यात्मिक मार्ग—दर्शक हैं। लोग उन्हें विभिन्न नामों और विभिन्न शीर्षकों से जानते हैं। कुछ कहते हैं, वे संत हैं। कोई कहता है उन्होंने आत्म साक्षात्कार किया है। कोई कहता है, वे युगावतार हैं और इसी प्रकार की चर्चा होती है। श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में यह बात पूर्णरूपेण समझी जाती है कि आध्यात्मिक विचारों की दुनिया में उन्होंने अभूतपूर्व योगदान दिया है, यह वह शक्ति है जो मानव-मात्र को विशेष गतिशील समाज की ओर उन्मुख करती है। श्रीरामकृष्ण की विचार-धारा का स्रोत पूर्णतया आध्यात्मिक है, सीमित अर्थों में आध्यात्मिक नहीं। उनकी आध्यात्मिकता कई धार्मिक कृत्यों का अनुपालन मात्र ही नहीं है। यह कुछ सिद्धांत मात्र नहीं है, जिनपर हमें विश्वास करना है। यह दैवी शक्ति है जो हमारे व्यक्तित्व के उच्चतर पक्षों के विभिन्न पहलुओं को अनावृत करने में हमें सहयोग देती है। यह उन्नत मनुष्य का निर्माण करती है और इस प्रकार एक उन्नतिशील समाज का निर्माण करती है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने विशाल साहित्य में श्रीरामकृष्ण के विचारों की समुचित व्याख्या की है। स्वामी विवेकानन्द के अभिभाषण और उनकी रचनाएँ आज सारे भारत ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण विश्व के लिए ज्ञानवर्धक स्रोत हैं। श्रीरामकृष्ण का उद्भव केवल इस देश के लिए नहीं था। वे इस संसार में एक नया

जीवन-दर्शन देने आये थे, जो हमारे आधुनिक जीवन के उद्देश्य भौतिकवाद को अन्तः एवं वाह्य ईश्वर की प्राप्ति में परिणत कर दे। इसी से मनुष्यता देवत्व के स्तर तक पहुँच सकती है। यही सिद्धांत है जिसका श्रीरामकृष्ण ने प्रतिपादन किया था। श्रीरामकृष्ण का, जैसा कि उन्होंने अभिव्यक्त किया है, ईश्वर-प्राप्ति को छोड़कर और कोई सिद्धांत नहीं। ईश्वर के सम्बन्ध में उनकी मान्यता सीमित विचार से कुछ मूर्तियों के पूजन या देवी-देवताओं के पूजन या धार्मिक कृत्यों से नहीं थी। ईश्वर के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की मान्यता थी कि वे सभी तत्वों में स्थित हैं, जिससे ज्ञात यह सम्पूर्ण विश्व आच्छादित है और वे लोक भी, जो हमारी बुद्धि से परे हैं। श्रीरामकृष्ण की मान्यता थी कि जिसे हम ईश्वर कहते हैं उसमें सभी कुछ समाविष्ट है। वाद में उनके विचारों की व्याख्या एवं प्रसार उनके अग्रणी शिष्य स्वामी विवेकानन्द और परवर्ती काल में रामकृष्ण संघ के अन्य संन्यासियों ने किया। यह संघ रामकृष्ण मठ या रामकृष्ण मिशन के रूप में सामान्यतया जाना जाता है। किन्तु श्रीरामकृष्ण की विचार-धारा इस संघ तक ही सीमित नहीं है क्योंकि न केवल संन्यासी बल्कि सामान्य असंख्य व्यक्ति भी उनकी विचार-धारा का अनुकरण करते हैं। सभी स्थानों में श्री रामकृष्ण की विचारधारा को गृहस्थों ने भी समान रूप से प्राप्त किया है, वे उससे अनुप्राणित हुए हैं तथा उन्होंने अपने को इसके लिए समर्पित किया है। इस प्रकार यह आन्दोलन बिना किसी पूर्वनियोजित कार्यक्रम के ही फैल रहा है। मनुष्यता की उच्चत्तर श्रेणी के सृजन में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में आज यह इतना विकसित हो चुका है। यह सोचना धृष्टता नहीं कहलायेगी। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि श्री रामकृष्ण संघ की स्थापना के पीछे उनकी यह विचार-धारा कार्यशील है कि श्रीरामकृष्ण की युग प्रवर्तक विचारधाराओं से समस्त विश्व को परिचित किया जाय। सारे विश्व में इन विचार-धाराओं का प्रसार बिना किसी आरक्षण या बिना किसी सीमा के किया जाय। हम सभी विश्वास करते हैं कि श्रीरामकृष्ण समस्त विश्व के थे और उनकी विचार-धारा का प्रसार सभी स्थानों में होना चाहिए। इन विचार-धाराओं के प्रसारण हेतु एक संगठन की आवश्यकता को देखकर स्वामीजी ने इस आन्दोलन को प्रारम्भ किया।

स्वामी विवेकानन्द ने इसकी स्थापना श्रीरामकृष्ण के नाम पर की। वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द ने नहीं, श्रीरामकृष्ण ने स्वयं इसकी स्थापना अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में की। अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों में उन्होंने ऐसी प्रतिभाएँ एकत्र कीं जो उनके अपने ऐतिहासिक त्यागमय जीवन और ईश्वर-अनुप्राणित नूतन विचारधाराओं को आत्मसात् करने में सक्षम थे। मानवता के विकास के लिए इन विचारधाराओं के प्रसार का कार्य उन्हें सौंपा गया। इस प्रकार शनैः शनैः यह संगठन इस रूप में विकसित हुआ। उन युवकों ने यह नहीं सोचा था कि वे एक संघ को जन्म दे रहे हैं। ये युवक आये और उन्होंने श्रीरामकृष्ण के चरणों में आत्म-समर्पण किया। उन्होंने सोचा कि उनका एक ही उद्देश्य है भगवत्-प्राप्ति और आध्यात्मिक जीवन का विकास और इस प्रकार मोक्ष या आत्मज्ञान प्राप्त करना। यह शुरुआत थी। किन्तु धीरे-धीरे सुषुप्त विचार-धाराएँ प्रस्फुटित हुईं, जिन्होंने एक विश्व-शक्ति का रूप ले लिया, जो मात्र बौद्धिक विषय या मात्र चिंतन होकर ही नहीं रह गयीं बल्कि जिन्होंने लोगों के जीवन को आधार दिया किसी दार्शनिक व्यवस्था या किसी सिद्धांत का। यह मात्र चिन्तन और मनन नहीं था। इसका उद्देश्य था मनुष्य का निर्माण करना या मनुष्य में छिपे ईश्वरत्व का विकास करना। यह प्रारम्भिक अवस्था थी। धीरे-धीरे श्रीरामकृष्ण के इन युवा शिष्यों ने यह अनुभव किया वे केवल अपने आध्यात्मिक विकास के लिए नहीं आये हैं। उन्होंने उन विचारों के प्रसार में अपने गुरु श्रीरामकृष्ण के दायित्व में हिस्सा भी लिया जिससे सारे विश्व के लोग इससे अवगत होंगे तथा वे भौतिक के साथ ही साथ आध्यात्मिक समस्याओं का निदान प्राप्त करने में सक्षम होंगे। इस प्रकार यह संघ धीरे-धीरे विकसित हुआ।

श्रीरामकृष्ण के शिष्य जब बाड़ानगर के मठ में रहते थे, उस समय इन युव-जनों की टोली त्याग की ज्वलन्त प्रतिमूर्ति थी। उनके पास खाने के लिए यथेष्ट सामग्री नहीं थी, पहनने के लिए एक प्रकार से कुछ भी नहीं था। एक जीर्ण-शीर्ण मकान में किसी प्रकार उन्होंने रहने की व्यवस्था कर ली थी। खाने की यथेष्ठ सामग्री के अभाव में वे भिक्षु संन्यासियों की तरह बाहर भिक्षाटन हेतु जाते थे। इस प्रकार उन्होंने भिक्षु संन्यासियों का जीवन प्रारम्भ किया। उनमें से कुछ में हिमालय या अन्य पवित्र स्थानों में जाकर ध्यान एवं चिन्तन कर जीवन व्यतीत करने की इच्छा जागृत हुई। इस प्रकार उन्होंने अपने संन्यासी जीवन का प्रारम्भ किया। किन्तु धीरे-धीरे स्वामी विवेकानन्द के मन में यह भाव उदित हुआ कि श्रीरामकृष्ण यह नहीं चाहते थे कि वे इतने मात्र से संतुष्ट हो जायें। अपने लिए आध्यात्मिक सम्पदा एकत्र करना एक प्रकार की कृपणता है। इस प्रकार सोचना क्षुद्रता का परिचायक है। जो भी सम्पत्ति है, उसका वितरण करना चाहिए कि सभी लोग उसका उपभोग कर सकें। इस प्रकार उनकी अपनी विचार-धारा बदलती गयी। एक बार जब स्वामी विवेकानन्द पश्चिम भारत में भ्रमण कर रहे थे, अकस्मात् श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्य स्वामी तुरीयानन्द से उनकी भेंट हो गयी। स्वामी जी उनसे बोले, "हरि भाई (स्वामी तुरीयानन्द का पूर्व नाम हरि था) मैं नही जानता कि तुम्हारा यह धर्म क्या है। किन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि मेरा हृदय अब बहुत उदार हो गया है और अब यह समस्त मानव जाति को अंगीकार कर सकता है। यह समस्त मानवता के लिए सोचता है।" श्रीरामकृष्ण की इच्छा भी यही थी कि वे वैसा बनें। श्रीरामकृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य नरेन्द्रनाथ से कहा था कि उनका जीवन मात्र उनका नहीं है, और न यह उनके निजी आध्यात्मिक आत्मज्ञान के लिए है। एक बार जब श्रीरामकृष्ण ने उनसे पूछा था, "जीवन में तुम्हारा उद्देश्य क्या है।" युवक नरेन्द्र ने उत्तर दिया था, "मैं सदा समाधि में निमग्न रहना चाहता हूँ और कभी-कभी जब मैं बाह्य चेतना के स्तर पर नीचे आऊँ तो थोड़ा सा खा कर ही यह शरीर जीवित रह सके और पुनः समाधि में स्थित हो जाऊँ। श्रीरामकृष्ण ने यह कहते हुए उन्हें कड़ी फटकार दी, "मैं सोचता था कि तुम आध्यात्मिक रूप से महान व्यक्तित्व हो। तुम्हें वट वृक्ष की तरह होना चाहिए, जिसकी शाखाओं की छाया चारों ओर फैले और थके पथिक वहाँ जाकर आश्रय लें और उसकी छाया में विश्राम करें एवं शान्ति का अनुभव करें। इसके विपरीत तुम अपने आनन्द और अपनी तुष्टि के विषय में सोचते हो। अपनी निजी संतुष्टि के परे भी वृहत्तर जीवन बिखरा पड़ा है।" और इस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ के चरित्र का निर्माण किया और उन्हें वट वृक्ष के रूप में विकसित किया ताकि विभिन्न स्थानों से संसार के थके प्राणी आएँ एवं वहाँ आकर आश्रय ले। यह श्रीरामकृष्ण की ही शक्ति थी जो नरेन्द्र के शरीर के माध्यम से कार्य कर रही थी और बाद में स्वामी विवेकानन्द के रूप में प्रकट हुई। यह विचार धीरे-धीरे संस्था के रूप में विकसित हुआ और मानव मात्र को हर प्रकार से आध्यात्मिक के साथ साथ भौतिक रूप से एक सशक्त यंत्र के रूप में सहायक हुआ। श्रीरामकृष्ण के जीवन में भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच की दूरी समाप्त हो गयी थी। सभी स्थानों में उन्हें ईश्वर ही दीख पड़ते थे तथा प्रत्येक कार्यों में उन्हें ईश्वर की इच्छा ही दीख पड़ती थी। वे सभी वस्तुओं में एक ही सत्ता की अनुभूति करते थे। जीवन भर, उनकी आत्मा विश्वात्मा के साथ मंगलमय मिलन का संधान करती रही। ईश्वर की अनुभूति ही उनका एकमात्र उद्देश्य था किन्तु यह उस ईश्वर की अनुभूति थी जो सभी स्थानों में तथा सभी वस्तुओं में व्याप्त हैं—पापियों मे, दुःखों में, मृत्यु में तथा जीवन के सभी कर्मों में।

इस प्रकार इस आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे संघ का विकास हुआ। तब इसने अनुभव किया कि मनुष्यता की सेवा का अर्थ मात्र कुछ अच्छे और उच्च विचारों की शिक्षा देना ही नहीं है। हमें उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहना है। हमें यह समझना चाहिए कि

मनुष्य की कठिनाइयाँ क्या हैं और उनके समाधान में सभी प्रकार का सहयोग देना चाहिए कि वे विकासेन्मुख हों। भौतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति का यह एक व्यापक विचार है। स्वामी विवेकानन्द ने इसे इस प्रकार समझा था तथा हर क्षेत्र में मानव जाति की सेवा का प्रयास किया था। इस प्रकार इस संगठन ने मानव जाति की सेवा का कार्य प्रारम्भ किया। एक परिव्राजक संन्यासी के रूप में स्वामीजी ने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक की, उत्तर से दक्षिण तक की तथा पूर्व से पश्चिम तक की यात्रा की। वे सभी व्यक्तियों के जीवन में, विशेषकर लाखों पददलितों के दुःखों में वे सम्मिलित हो गये, उन्होंने उनको कठिनाइयाँ समझी, उनके दुख दर्द का अनुभव किया। मानवीय कष्ट ने इन व्यक्तिगत अनुभवों ने सभी प्रकार से उनके कष्टों के उन्मूलन हेतु, आत्म समर्पण हेतु उन्हें प्रेरणा दी। श्रीरामकृष्ण की युगान्तरकारी विचारधारा, जो स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तिगत अनुभवों और प्रत्यक्ष दर्शनों द्वारा सत्यापित थी, वही आज के इस नव आन्दोलन का आधार है। आज इसका कार्य-क्षेत्र मात्र आध्यात्मिक उपदेश देना या आध्यात्मिक विचार देना ही नहीं है बल्कि सभी प्रकार से मानवमात्र की सेवा करना है। उदाहरणस्वरूप आप इस स्वशासित आश्रम में भी विद्यालय और औषधालय पाते हैं। ये ग्रामीणों के भाग्योदय का प्रयास कर रहे हैं। और फिर भी यह याद रखना चाहिए कि यह केवल सामाजिक सेवा संघटन नहीं है। एक सामाज सेवी संगठन आर्थिक या भौतिक या बहुत हुआ तो मानसिक विकास द्वारा ही लोगों के भाग्य के उन्नयन का विचार करता है। यह काफी नहीं है। जब तक व्यक्ति अपने भीतर की अपरिमित आध्यात्मिक शक्ति में प्रतिष्ठित नहीं हो जाता, उसकी समस्याएँ नहीं सुलझ सकतीं। समस्याएँ एक आकार में खड़ी हो जायेंगी। वह उनका समाधान करने का प्रयास करेगा। फिर वे दूसरे आकार में खड़ी हो जायेंगी। पूरे अस्तित्व के विकास, सम्पूर्ण व्यक्तित्व के आध्यात्मीकरण पर ही हमारी समस्याओं का अन्तिम समाधान निर्भर करता है। स्वामी विवेकानन्द, तथा बाद में उनके नेतृत्व में विकसित संगठन ने इस प्रकार कार्य करना प्रारम्भ किया। भाव यह है कि हमारी समस्याओं के समाधान के मार्ग को निश्चय पूर्वक व्यावहारिक रूप में दिखाया जाना चाहिए। लोगों को यह दिखलाया जाय कि वे अपने दुःख से कैसे मुक्ति पा सकते हैं और एक ऐसे प्राणी के रूप में उभर सकते हैं जो जीवन्त हो, प्रकाशमय हो और आनन्दमय हो। यह संघटन इसी प्रकार के कार्य करने में संलग्न है। इन विचार-धाराओं को व्यवहार में लाने के लिए एक सुगठित संगठन की आवश्यकता है, जिसके बिना ये विचार जड़ नहीं जमा सकेंगे और उतनी अधिक विश्वसनीयता से कार्यान्वित भी नहीं हो पायेंगे। लेकिन हमलोगों को सर्वदा याद रखना चाहिए कि आदर्श और भाव एक दूसरे से मिश्रित न हो जायँ। ऐसी किसी प्रकार की विचार धारा का मिश्रण नहीं होना चाहिए जो श्रीरामकृष्ण के मूल भावों को विकृत करती है। हमें अपने समक्ष निर्धारित उच्च आदर्श के प्रति सर्वदा विश्वासी और निष्ठावान होना चाहिए। यही कारण है कि संगठन को सतर्क एवं सावधान रहना चाहिए, विशेषकर अपने सदस्यों के जीवन और कर्मों के प्रति। श्रीरामकृष्ण मठ आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है और रामकृष्ण मिशन जीवन में पूर्णता लाने वाले आध्यात्मिक प्रयत्नों से बिना मुख मोड़े हुए लोककार्य को भी महत्ता देता है। मठ द्वारा संचालित कई केन्द्र जन कार्य, कल्याणकार्य करते हैं। मिशन के केन्द्र भी वस्तुतः वही कार्य करते हैं। किन्तु मिशन के केन्द्र सामान्य जन-जीवन के निष्कपट एवं अनुरक्त लोगों को इस कार्य के लिए सम्मिलित करता है कि वे संन्यासी कार्यकर्त्ताओं के साथ सहयोग करें और इस विचार-धारा को जन-साधारण के बीच अधिक शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण बनावें। यह विचार-धारा प्रारम्भ से थी। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द परम्परा में संन्यासी जीवन के अपने ही आवरण में सिमट कर नहीं रह जाता। गृहस्थों के जीवन में भी भद्रता लाने के लिए यह कर्मठ हो जाता है। यही कारण है कि श्रीरामकृष्ण मिशन की स्थापना की गयी जिसमें सामान्य भक्तों ने कर्मठता से

योगदान दिया। जब हम विचार करते हैं कि इतना महान कार्य करना है तो श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन एक लघु संस्था दीख पड़ते हैं। हमारे संन्यासिओं की संख्या बहुत कम है, १८०० या उसके लगभग। उनमें भी वृद्ध संन्यासी हैं, जो सक्रिय कार्य करने में सक्षम नहीं। युवक भी हैं जो अभी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं और कुछ वर्षों के बाद उपयोगी हो सकते हैं। सक्रिय कार्यकर्त्ताओं की संख्या एक हजार से भी कम है। हमारे पास बहुत से केन्द्र भी हैं। भारत और विदेशों में लगभग १४० केन्द्र हैं, जिनके लिए यह संख्या पूर्णतया अनुपयुक्त है। कभी कभी हमलोग प्रभावपूर्ण रूप से तथा बृहत् रूप से जैसा हम करना चाहते, नहीं कर पाते हैं। यही कारण है कि हम अनुभव करते हैं कि इस राउरकेला रामकृष्ण आश्रम के सदृश अधिक स्वशासित केन्द्रों का उद्भव हो। ये विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करें जहाँ मठ और मिशन के केन्द्रों की स्थापना नहीं हो पायी है ताकि यह भाव आन्दोलन अधिक से अधिक सर्वत्र फैल सके। जब एक छोटी जल-धारा प्रवाहित होती है तो वह बड़ी नदी का रूप ले लेती है, जबकि एक धारा यदि वह अलग प्रवाहित होती है तो जल-धारा मात्र ही रह जाती है। मुझे याद आता है जब मैं पहली बार अमरकंटक गया और नर्मदा के स्रोत को देखा तो वहाँ मैंने पाया कि यह एक जल-धारा मात्र है जो घाटी से नीचे की ओर मंद गति से प्रवाहित हो रही है। किन्तु धीरे-धीरे कई जल-धाराएँ दूसरी ओर से, चारों ओर से आकर मिलती हैं और कुछ दूरी के बाद यह नर्मदा महानदी हो जाती है। प्रारम्भ में हमारे संघ का विकास इसी प्रकार हुआ। थोड़े से संन्यासियों ने मिल-जुलकर अपना जीवन प्रारम्भ किया। श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग १६ शिष्यों से ही आज १४०० संन्यासिओं की यह अपार शक्ति विकसित हो पायी है। धीरे-धीरे यह संख्या बढ़ेगी और हमारा कार्य-क्षेत्र भी अधिक प्रशस्त होगा। तदर्थ यह आवश्यक है कि स्वशासित केन्द्रों को भी उन्हीं आदर्शों और लक्ष्यों की ओर गतिमान होना है जैसा हमने निर्धारित किया है और उन्हें हमें अपेक्षित सहयोग देना चाहिए कि हम विश्व कल्याण के लिए अधिक शक्ति सम्पन्न हो सकें।

हमलोग इस कथन को धृष्टतापूर्ण समझ सकते हैं कि हम सम्पूर्ण विश्व में कुछ महान और प्रभावशाली कार्य करने जा रहे हैं। किन्तु हममें से कुछ व्यक्ति ही विचारों की शक्ति को जानते हैं। विचार-धाराएँ जैसे-जैसे विकसित होती और अधिकाधिक मस्तिष्क और जीवनों को प्रभावित करती जाती हैं वैसे वैसे शक्तिशाली होती जाती हैं। तब धीरे-धीरे वे सम्पूर्ण जगत में परिवर्तन हेतु एक विशाल शक्ति के रूप में प्रकट होती हैं। हाँ, इसमें समय लगता है। एक या दो दिन में यह नहीं होता। संभवतः इसमें सदियाँ लग जायेंगी। किन्तु यदि हम संगठनों के प्रारम्भिक जीवन का निकट से अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि विगत सौ वर्षों में कितनी विशाल विश्व-व्यापी शक्ति इसने एकत्र कर ली है। यह हमें प्रोत्साहित करता है। हमलोग वस्तुतः भविष्य में एक महान युगान्तकारी शक्ति होने जा रहे हैं। और यह शक्ति केवल संन्यासियों से प्राप्त नहीं होगी, बल्कि आप जैसे असंख्य भक्तों के योगदान से ही प्राप्त की जा सकती है। संन्यासी, साथ ही साथ गृहस्थ भी इस अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन को समृद्ध बनाने में अपना अन्यतम सहयोग दे सकते हैं। रामकृष्ण मठ या मिशन के कुछ केन्द्रों से यह संभव नहीं है। उस आदर्श से प्रभावित हो स्वशासित केन्द्र चारों ओर विकसित होंगें और वे विश्व के सभी कोनों में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की विचार-धारा का प्रसार करेंगे। यह गर्वोक्ति नहीं है यदि हम कहें कि हम अनुभव करते हैं कि इस प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन संभाव्य है।

इतने कम समय में इस प्रकार की विशाल विश्व-शक्ति के रूप में प्रकट होना मानवता के इतिहास में अद्वितीय है। बौद्ध-धर्म का प्रसार कुछ ही दिनों या कुछ ही वर्षों में नहीं हुआ। बौद्ध-धर्म को शक्तिशाली संगठन के रूप में उभरने में लगभग तीन शताब्दियाँ लग गयी थीं। जब हम बाह्य विश्व को देखते हैं तो पाते हैं कि बौद्ध-धर्म में कितनी विशाल शक्ति है।

बिना किसी राजनैतिक शक्ति के, बिना किसी राजकीय शक्ति के गठबन्धन के, मात्र बुद्ध की विचार-धाराओं की शक्ति से यह आन्दोलन सम्पूर्ण विश्व में फैल गया। आज भी यह महान शक्ति सम्पन्न है। रामकृष्ण-विवेकानन्द आन्दोलन के साथ उसी प्रकार की प्राकृतिक घटनाएँ घट रही हैं। यह फैलाव बौद्ध-धर्म की अपेक्षा ज्यादा तीव्र है। आज यह भारत में ही एकमात्र सीमित नहीं है। यदि आप दुनिया के बाहर जायें तो आप पायेंगे कि अमेरिका के कई स्थानों में, युरोप में, यहाँ तक कि रूस में रामकृष्ण-विवेकानन्द की विचार धाराएं लोगों को काफी प्रभावित कर रही हैं। ये उसी प्रकार फैल रही हैं। इन विचार-धाराओं के अध्ययन के लिए कई विश्वविद्यालय लोगों को नियुक्त कर रहे हैं। इस प्रकार कई लोग इन विचार-धाराओं का अध्ययन कर रहे हैं। उनमें से कई रामकृष्ण विवेकानन्द आन्दोलन विषय पर शोध-कार्य भी कर रहे हैं। आज यह आन्दोलन महान शक्तिसम्पन्न हो चुका है और इसका अर्थ हुआ कि श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द की इच्छानुसार हमारे कंधों पर बृहत्तर उत्तरदायित्व आ पड़ा है। जबकि यह महान उत्तरदायित्व हमारे कंधों पर है, तो हमें इस प्रकार अपने जीवन और सेवाओं का उपयोग करना है कि इस आन्दोलन को प्रभावशाली सहयोग प्राप्त हो सके। हमें इस संदेश को हार्दिक प्रयासों से फैलाना है। बाइबिल कहती है कि मोमबत्ती जलायी जाती है इसलिए नहीं कि उसे एक बुशल के अन्दर रखा जाय, बल्कि उसे शमादान में रखा जाय जिससे चारों ओर प्रकाश मिल सके। श्रीरामकृष्ण ने हम संन्यासियों और गृहस्थों का चुनाव किया है कि हम उनके विचारों का अपने जीवन में अनुकरण करें और लाखों व्यक्ति हमसे लाभान्वित हों। अपने विशाल आन्दोलन के प्रकाश संवाहक के रूप में उन्होंने हमारा चयन किया है कि यह विश्व के दूरस्थ कोने में फैले। इससे पूर्व हमें विश्राम नहीं। यह सच है कि हमें कुछ कम सफलता मिली है किन्तु हमारे आगे आनेवाली बृहत्तर सफलता की तुलना में यह कुछ नहीं है। हमें अपने महान उत्तरदायित्व को याद रखना है। स्वशासित केन्द्र बढ़ रहे हैं किन्तु उस गति से नहीं जो उत्साह अवरोधक हो। अधिक से अधिक लोग इन केन्द्रों में आते हैं और इसके विकास में सहयोग देते हैं, जैसा कि आप इस छोटे केन्द्र में दृष्टांत रूप में पाते हैं। कुछ ही वर्षों के अन्दर इस स्वशासितकेन्द्र ने अच्छा रूप ले लिया है और हम आशा करते हैं कि यह अधिक से अधिक विकसित होगा और कई स्थानों में सेवा-कार्य का प्रसार करेगा। सेवा का यह क्षेत्र जीवन की सभी दिशाओं को अपने में समाहित कर लेगा। हमारे स्वशासित केन्द्रों से इसी प्रकार की आशा की जाती है। विचार-धाराएँ यहाँ हैं। केवल उन्हें एक रूप प्रदान करना है और यह उन लोगों द्वारा संभव है जो इन विचार-धाराओं को जुए की तरह नहीं लेते वरन् जीवन की एक गति मानते हैं। इस प्रकार ही कार्य प्रभावोत्पादक हो पायेंगे। हम देखते हैं कि अभी इस प्रकार के आश्रम या जिन्हें हम स्वशासित केन्द्र कहते हैं, बहुत बड़ी संख्या में विद्यमान हैं। अपने विगत महोत्सव में हम लोगों ने अनुमान लगाया था कि इस प्रकार के लगभग १००० केन्द्र हैं। यदि आप युरोप या अमेरिका जायँ तो आप पायेंगे कि इस प्रकार के केन्द्र बिना हमारे सहयोग के ही विकसित हो रहे हैं। ये विकसित हो रहे हैं क्योंकि इस आन्दोलन के पीछे जीवन-दायिनी विचार-धारा है। लोग इन विचार-धाराओं को सभी जगह जीवन का व्यावहारिक मार्ग मानकर अपना रहे हैं, इसलिए नहीं कि उनका भौतिक जीवन सुखमय हो बल्कि सम्पूर्ण अस्तित्व ही मंगलमय हो जाय। जीवन क्षेत्रों में विभक्त नहीं किया जा सकता। हमें सम्पूर्ण अस्तित्व में परिवर्तन लाना है। श्रीरामकृष्ण ने हमें वह शक्ति दी है जिससे हम अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को रूपान्तिरित कर सकते हैं। इन विचारों को ग्रहण करना और जीवन में उनका व्यावहारिक रूप में अनुकरण करना हम पर निर्भर करता है। आवश्यकता है कि इन विचारों के साथ व्यावहारिक गठबन्धन हो। साथ ही इन विचारों को अपने जीवन में रूपायित करने के लिए उत्साहपूर्ण संघर्ष हो। किन्तु यह कभी कभी भाषण देने या वर्ष में एक, दो या तीन बार समारोह के आयोजन से संभव नहीं है। हमें इन विचारों

को नियमित रूप से व्यवहार में लाना है। हमें अपने जीवन में इन्हें आकृति के रूप में लाना है। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के हाथों में हमलोग एक प्रभावशाली यंत्र के रूप में विकसित होंगे। तभी हमलोग सच्चे भक्त कहलाने योग्य हो पायेंगे। हम दृढ़ता से विश्वास करते हैं कि श्रीरामकृष्ण विश्व को पुनर्जीवन देने आये थे। पुनर्जीवन का अर्थ है क्रम भौतिकवाद की वर्त्तमान स्थिति से विश्व को उठाकर आध्यात्मिक जीवन के उच्च स्तर पर ले जाना। यह मानवता का देवत्वीकरण है। यह आन्दोलन अधिक से अधिक विकसित होगा। इस आन्दोलन के प्रकाश-संवाहक के रूप में हमलोग भी श्रीरामकृष्ण की शक्ति के साकार रूप होंगे। हमसे यही आशा की जाती है। स्वशासित केन्द्रों का महत्व केवल यह अर्थ नहीं रखता कि अपने चारों ओर के लोगों के लिए कुछ व्यावहारिक सेवा कार्य मात्र ही किये जायँ हमें एक जीवन का दिग्दर्शन कराना है। संगठन के जीवन का अर्थ है लोगों का जीवन जो इनसे सम्बद्ध हैं। उन्हें पूर्णहृदय से, एकसाथ जुटकर तथा विचारों के प्रति पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य करना है कि ये विचार-धाराएँ अन्य वस्तुओं के साथ मिश्रित न हो जायँ। उन्हें इस प्रकार का पौरुष धारण करना है कि वे स्वयं श्रीरामकृष्ण या स्वामी विवेकानन्द का स्वरूप बनकर आये हैं। इस प्रकार के स्वशासित केन्द्र, जहाँ सेवा के साथ साथ आध्यात्मिक चिन्तन भी हो, हमारा लक्ष्य है। इस स्वशासित केन्द्र में भी हमारा यही लक्ष्य है।

हम लोग चारों ओर फैल जाएँ और इस प्रकार हमलोग न केवल अपनी सेवा करेंगे या अपना विकास करेंगे वरन् आध्यात्मिक श्रम और सेवा से अनुप्राणित जीवन द्वारा हमलोग दूसरों के लिए सहायक हो सकेंगे। दूसरों की सहायता कर हम अपनी ही सहायता करते हैं। हमारा जीवन सर्व-समाहित और सुन्दर होगा। इस प्रकार विस्तृत विकास होगा न केवल कुछ व्यक्तिओं का बल्कि सम्पूर्ण समाज का। हमें सर्वप्रथम विचार-धाराओं के प्रति निष्ठावान होना चाहिए और उत्सर्ग की भावना के साथ इन विचारों को अपनाना चाहिए। हमलोग यहाँ हैं जहाँ तक संभव हो कार्य करने के लिए। श्रीरामकृष्ण के हाथों में यंत्र के रूप में प्रतिष्ठित होकर हम यहाँ आये हैं कि वे हमारे जीवन को परिवर्तित करेंगे और हमारे सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के जीवन में भी परिवर्तन लायेंगे। उनका आशीर्वाद हमें प्राप्त हो।

अनुवादक :—श्री उमेश चन्द्र
बिहार वित्त सेवा, दुमका

सर्वभूत-सर्ग-कर्म-सूत्र-बन्ध-कारणं, ज्ञान-कर्म-पाप-पुण्य-तारतम्य-साधनम्।
बुद्धि-वास-साक्षिरूप-सर्व-कर्म-भासनं, तं नमामि देव-देव रामकृष्णमीश्वरम्॥

जिन्होंने अखिल प्राणिमात्र को कर्मसूत्र में बाँध रखा है, (संसार में) ज्ञान, कर्म और पाप-पुण्य के तारतम्य का जो विधान करते हैं, मनुष्य के बुद्धि (हृदय) रूपी घर में जो निवास करते हैं, जो निर्लिप्त साक्षीस्वरूप से रहते हुए भी समस्त कर्मों के प्रेरक हैं, उन परमदेव भगवान श्रीरामकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।

—श्रीमत स्वामी विरजानन्दजी महाराज

झंडू भट्ट विट्ठलजी

—श्रीमत् स्वामी अखंडानन्दजी महाराज
तृतीय अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन।
अनुवादक—श्री नागरदास बावरिया
२, न्यू पंचशील नगर, रायपुर (म० प्र०)

[श्री रामकृष्णदेव के शिष्य तथा रामकृष्ण मठ एवं मिशन के तीसरे अध्यक्ष श्री मत् स्वामी अखंडानन्द जी महाराज ने अपने गुरुभाइयों में सबसे अधिक भ्रमण किया था। बंगला भाषा में लिपिबद्ध "स्मृति कथा" नामक उनकी संस्मरण पुस्तिका के कई पृष्ठ इन भ्रमण-वृतान्तों से भरे पड़े हैं। वे तिब्बत भी गये थे जो उन्नीसवीं सदी के अंत में बड़ा ही कठिन और खतरनाक कार्य था। उनके भ्रमण-वृतान्तों में कुछ ऐसे महानुभावों का स्पष्ट चरित्र-चित्रण भी है जिनके सम्पर्क में वे आये थे या जिनके साथ वे रहे थे। 'स्मृति कथा' से उद्धृत इस निबन्ध में भट्ट जी नामक जिस प्रेरणादायक व्यक्ति का चरित्र-चित्रण हुआ है वे भारतवर्ष के गुजरात प्रान्त के जामनगर नामक स्थान के निवासी थे। अखंडानन्द जी उनके तथा मणिशंकर विट्ठल जी (शंकरानन्द नामक एक धनाढ्य तथा धार्मिक व्यक्ति) के सम्पर्क में आये थे और उनके साथ रहे भी थे। उन्होंने इस गुजरात प्रदेश में सन् १८९१/९२ में व्यापक भ्रमण किया था।]

जब मैं पहलीबार गुजरात राज्य के जामनगर शहर गया था तब श्री झंडू भट्ट जी वहाँ नहीं थे। वे मरीजों को देखने के लिए बाहर गये हुए थे। जब वे धनवन्तरी धाम (अपने घर) लौटे तब उनके साथ मेरी जान-पहचान हुई। मैंने सुना था कि वे अतुलनीय दानशील व्यक्ति थे।

जब उन्होंने मुझसे मिलने शंकर जी सेठ के घर आना-जाना शुरू किया, उसके कुछ ही समय पहले श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर इस संसार से विदा ले चुके थे और उनकी जीवनी प्रकाशित हो चुकी थी। भट्ट जी उस पुस्तक को पाने के लिए बड़े ही आग्रहान्वित थे। अतएव, उन्होंने मुझे उसके लिए रुपये भी दे दिये। जब वह पुस्तक प्राप्त हो गयी तब वे उसका पाठ सुनने नियमित रूप से शंकर जी सेठ के घर आया करते थे। जब-जब वे श्री विद्यासागर के परोपकारी कार्यों के बारे में सुनते, वे फूट-फूटकर रो पड़ते थे।

जूनागढ़ में भट्ट जी के साथ स्वामी विवेकानन्द जी की जान पहचान हुई थी। वहाँ स्वामी जी द्वारा गाये गये एक गीत को सुनकर वे रो पड़े थे। गीत का भावार्थ था "हे दया के सागर, तुम्हारा कार्य हमारी समझ से परे है, इत्यादि।" स्वामी जी कहा करते थे, मैंने कई स्थानों को देखा है तथा कई परोपकारी व्यक्तियों को देखा है लेकिन मैंने भट्ट जी जैसा दयालु व्यक्ति कहीं नहीं देखा।

भट्टजी ने कुछ समय तक योग का अभ्यास किया था और साथ ही नियमित जीवन यापन किया था। उनके भोजनादि तथा नित्यक्रियादि में थोड़ा भी समय का हेरफेर नहीं होता था। लेकिन एक दिन श्री विद्यासागर की जीवनी सुनते-सुनते उनके शौच जाने का समय निकल गया। एक कहावत है कि जोगी तथा रोगी एक जैसे होते हैं। सिर्फ उस एक दिन की अनियमितता के कारण वे बीमार होकर कई दिनों तक कष्ट भोगते रहे।

जब पहलीबार मैं भट्टजी के घर गया तो मुझे उनका घर एक चिकित्सालय जैसा लगा। घर रोगियों से भरा पड़ा था। वे खाँसी, दमा, ज्वर आदि रोगों से पीड़ित थे। उनके उपचार एवं पथ्यादि की व्यवस्था हो रही थी।

भट्टजी तड़के चार बजे उठ जाया करते थे और अपनी पूजा-पाठ से निवृत्त हो बाहर आकर बैठते थे। इस समय झुंड-के-झुंड लोग उनके पास आते, साथ-साथ बैठकर चाय पीते और अपनी-अपनी दवाई के परचे प्राप्त करते। वे सिर्फ दवाई के परचे ही नहीं देते बल्कि अपने बहिरंग रोगी विभाग (Outdoor Dispensary) से दवाइयाँ भी गरीब तथा धनी सभी को देते थे। उनमें मँहगी दवाएँ भी रहतीं। इनके पास कोई भेदभाव नहीं था।

अपनी दिनचर्या के अनुसार ठीक नौ बजे वे अपनी साइकिल पर सवार होकर रोगियों को देखने निकल जाते। रोगियों को देखने की फीस वे नहीं लेते। एक-बार वे वढवाण के राजा ठाकुर साहब की चिकित्सा करने गये। ठाकुर साहब राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित थे। मैंने बहुतों से सुना है कि जब वे वहाँ से लौटने ही वाले थे कि राजा साहब ने एक-एक हजार की सात थैलियाँ इनके सामनें रखकर कहा—"मैं आपको कोई मिहनताना नहीं दे रहा हूँ। आप मुझे स्वस्थ नहीं कर सके, इसका कोई दुःख मुझे नहीं है। यह बीमारी ठीक न होने वाली है। मैं ये थोड़े से रुपये आपको सिर्फ दवाइयों के बदले में दे रहा हूँ।" भट्टजी पश्चाताप करते हुए बोले—"हमारी पुस्तकें कहती हैं कि यदि बीमारी की पहचान ठीक-ठीक हो तो बीमार कभी नहीं मर सकता। मैं आपकी बीमारी का ठीक से कारण नहीं जान सका हूँ। इसलिए आपकी तीमारदारी करने के बावजूद मैं आपका कुछ भी भला नहीं कर सका। यदि आज कोई हिन्दू राजा होता तो मुझे इसके लिए दण्ड मिला होता। मुझे सजा होती। आप मुझे ईनाम दे रहे हैं? मैं कैसे ले सकता हूँ?" भट्टजी बड़े दुःखी मन से आँसू बहाते हुए अपने घर लौट आये। उन दिनों उनपर एक लाख रुपये का कर्ज था। जामनगर के राजा उनका सारा कर्ज चुकाना चाहते थे लेकिन भट्टजी उनकी सहायता नहीं लेना चाहते थे।

मैंने उनके विषय में एक और घटना सुनी है। एक दिन एक ब्राह्मण ने भट्टजी के घर आकर भगवान के नाम पर भिक्षा की याचना की। उनके पास एक थैला था जिसमें दस भाग थे ताकि चावल, दाल, आटा आदि भिक्षा अन्नों को अलग-अलग रखा जा सके। भट्टजी के आँगन में बहुत से बर्तन साफ करने हेतु रखे रहते। ब्राह्मण ने चारों ओर देखा कि कोई नहीं है, फिर चुपके से उन्होंने एक जूठा बर्तन अपनी बहुमुखी थैली में डाल दिया। उसके बाद वे शीघ्रतापूर्वक वहाँ से सरकना चाहते थे। परन्तु भट्टजी ने उनके इस कृत्य को ऊपर से देख लिया था। उन्होंने तुरत संवाद भेजकर उन्हें बुलवा लिया और कहा-"झोली को वहाँ रखकर कृपया इस बिछावन पर बैठ जाइये।" ब्राह्मण भय रहित वहाँ बैठ गये। भट्टजी ने अपने एक नौकर को कहा—"एक नयी प्लेट में भिक्षान्न सामग्रियाँ ले आओ तथा साथ ही एक नया प्याला, एक जलपात्र एवं एक बड़ा ग्लास भी ले आना। नौकर ने फौरन आज्ञा का पालन किया। ब्राह्मण ने सोचा—ईश्वर को धन्यवाद; भट्टजी चोरी के माल को नहीं देख पाये। मैं बच गया।" भिक्षान्न को रखने के लिए अपनी झोली को ब्राह्मण उठाने ही वाले थे कि भट्टजी ने कहा—"झोली की आवश्यकता नहीं है। ये सभी पात्र भी आपके लिए ही हैं। आपको इनकी निश्चय ही जरूरत है अन्यथा आप जूठा पात्र क्यों उठाते? दोष हमारा ही है: हम आपकी आवश्यकताओं के बारे में एकदम बेखबर रहते हैं। कृपया आप इन सारी चीजों को ले जायँ।" इतना सुनते ही वह ब्राह्मण अश्रुपूरित नेत्रों से भट्टजी के पैरों पर गिरकर बोल उठा-"आप मनुष्य हैं या देवता," उसके बाद उस ब्राह्मण का जीवन बदल गया।

एक दिन टहलकर वापस आने पर देखता हूँ कि

फोड़ा-फुन्सी वाला एक कुरूप ब्राह्मण भट्टजी के पलंग पर पर सोया हुआ है और एक स्त्री उसके शरीर पर तेल की मालिश कर रही है । भट्टजी सामने बैठे हुए हैं और आयुर्वेद शास्त्र के पन्नों को उलट-पुलट रहे हैं । पूछने पर उन्होंने बताया कि "यह मनुष्य अति-कामुकता रोग से पीड़ित है। आयुर्वेद की पद्धति के अनुसार ऐसे व्यक्ति को मुलायम बिस्तर पर सुला देना चाहिए और चिकित्सक की उपस्थिति में उसके शरीर पर औरत से मालिश कराना चाहिए । इस तरह की व्यवस्था करने के बाद मैं उसके लिए औषध की खोज कर रहा हूँ । मैंने उनसे पुनःपूछा, "परन्तु अपने ही बिस्तर पर क्यों" ? तब भट्टजी ने कहा, " दूसरे बिस्तर की व्यवस्था करने में समय लग सकता था, इसीलिए मैंने ऐसी व्यवस्था की है।" कुछ समय बाद मानसिक विकृति से ग्रस्त वही व्यक्ति उनके परिवार का एक सदस्य हो गया ।

भट्टजी उक्त बीमारी के जल्दी ठीक न होने पर हवा तब्दीली के लिए दूर हरे-भरे मैदान में स्थित एक बंगले पर चले गये और मुझे भी अपने साथ ले गये। एक दिन हम अपना भोजन कर चुके थे और हाथ धो रहे थे कि दूर से एक स्त्री की आवाज आयी । भट्टजी को जैसे ही वह आवाज सुनाई पड़ी कि खड़ाऊँ पहने ही द्रुत वेग से वे उधर दौड़ पड़े। मैं चुपचाप उनके वापस आने की राह देखता रहा। जब वे वापस आये, मैंने देखा कि उनका पूरा चेहरा गोबर और कचरे से भरा हुआ था तथा उनका पूरा शरीर पसीने से लथपथ था । मैंने पूछा, "क्या बात है ? आप कहाँ गये थे" ? उन्होंने कहा,"मैदान में एक स्त्री ने कुछ गोबर एकत्रित किया तथा पास से गुजरने वालों को अपने सिर पर उसे उठा देने के लिये गुहार दे रही थी । लेकिन कोई भी उसकी मदद नहीं कर रहा था ।" दूर से ही यह देखकर भट्टजी समझ गये कि वह स्त्री संकट में है। अतएव वे उसकी सहायता करने वहाँ चले गये । तब भट्टजी की आयु साठ वर्ष की रही होगी ।

वयोवृद्ध भट्टजी संस्कृत का एक श्लोक गाया करते थे जो अब मेरी स्मृति के बाहर हो चुकी है लेकिन उसका भावार्थ इस प्रकार है, "मैं ऐसा स्वर्ग या अन्य कोई दिव्य लोक नहीं चाहता जहाँ मनुष्य की सेवा करने का कोई अवसर न हो ।" एक बार स्वामी विवेकानन्दजी भट्टजी के इस प्रिय श्लोक को मुझसे सुन रहे थे कि उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी ।

भट्टजी के जीवन को देखने पर मैंने अपने हृदय के अन्तस्थल में यह महसूस किया कि मानव की सेवा करने तथा उससे प्रेम करने से बढ़कर कुछ नहीं है । इस महापुरुष की उनकी बीमारी में सेवा करके मैं अत्यधिक आनंद पाता ।

[अपने जीवन के अंतिम दिनों में स्वामी अखंडानन्द जी कहा करते थे कि भट्टजी द्वारा गाया जाने वाला वह श्लोक शायद यही है :

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्ति नाशनम् ॥"]

[प्रबुद्ध भारत से साभार गृहीत तथा अनूदित]

शरीर का उपयोग दुखमय परिस्थिति में सेवा करने में है। ज्ञान का उपयोग शरीर और संसार से सम्बन्ध तोड़ने में और विश्वास का उपयोग परम-प्रेमास्पद से आत्मीय सम्बन्ध मानने में है। इन तीनों में मनुष्य स्वाधीन है।

— एक महात्मा

अवतार

—स्वामी वेदान्तानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

[गीता के विभिन्न अध्यायों में ईश्वर के अवतार के प्रयोजन पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत लेख में गीता के आधार पर अवतार तत्व का विवेचन किया गया है। कोष्ठक में गीता के अध्याय एवं श्लोक की संख्या पाठकों की सुविधा के लिए दे दी गयी है।—सं०]

सामान्य मनुष्य प्रकृति के तीन गुणों के वशीभूत हो अनेक प्रकार के कार्य करता है तथा उन कार्यों के फलों का भोग करने के लिए बारबार जन्म ग्रहण करता है, इस विषय में उसे किसी प्रकार की स्वाधीनता नहीं है। किन्तु, ईश्वर प्रकृति के नियामक हैं। उनके द्वारा शरीर धारण करना भला कैसे संभव हो सकता है? ईश्वर का यदि जन्म हो, उनके स्वरूप में यदि किसी प्रकार का परिवर्तन हो तो ऐसा होने पर वे फिर जीव-जगत के नियामक ईश्वर नहीं हो सकते। उनकी माया शक्ति, जो शक्ति असम्भव को सम्भव कर सकती है, उसी शक्ति की सहायता से वे समय-समय पर देह धारण करते हैं। (४/६)

जब समाज में धर्मभाव से, सद्भाव से जीवन-यापन करने की प्रवृत्ति कम हो जाती है, जब अनेक मनुष्य नीति ज्ञान छोड़कर नाना प्रकार के अनाचार करना शुरू कर देते है, योगी, लोभी और हिंसक होकर दूसरों को अहित करने की प्रवृत्ति मनुष्य में बढ़ जाती है, तब ईश्वर उसी समय देह धारण कर अवतरित होते हैं। (४/७)

देह धारणकर, अवतार के रूप में आविर्भूत होकर भगवान तीन कार्य करते हैं—यथा, साधुओं की रक्षा, असत् कार्य करने वाले व्यक्तियों का नाश तथा धर्म की स्थापना। साधु कहने से सत्कर्मपरायण व्यक्ति को समझना होगा; केवल विशेष वस्त्रधारी अथवा संन्यासी व्यक्ति मात्र नहीं। फिर, अवतार-रूप धारणकर भगवान सर्वदा-अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा पापियों का नाश करेंगे—ऐसा नहीं है। भागवत में बाइस अवतारों के नामों का उल्लेख करने के बाद कहा गया है कि ईश्वर असंख्य बार देह धारणकर आविर्भूत होते हैं। और, जिन अवतारों के नाम लिये गये हैं, उनमें से अनेक अवतारों ने किसी पापी का वध नहीं किया, केवल आदर्श जीवन-यापन और भौतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा के द्वारा मानव समाज की अधोगति के निवारण के लिए कार्य किये हैं।

धर्म संस्थापन का तात्पर्य है मानव समाज में धर्म भाव का उद्दीपन करना। भागवत में धर्म की कल्पना एक वृष (साँड़) के रूप में की गयी है। वृषभ (साँड़) को जिस प्रकार चार पाँव होते हैं, उसी प्रकार धर्म के भी चार अंग हैं। ये चार अंग हैं—तप (कठोरता का अभ्यास एवं इन्द्रिय संयम), शौच (शारीरिक पवित्रता एवं असत् चिन्तन का त्याग), दया (सभी जीवों को प्रेम करना) एवं सत्य। धर्म के इन चार अंगों में सत्य ही प्रधान है। सत्य के ऊपर जिस मनुष्य की दृढ़ता नहीं है, वह सत्य वचन बोलने पर भी सत्य चिन्तन नहीं कर पाता। वह मनुष्य ही नहीं है। पशु से भी हीन है। समय-समय पर जब-जब मनुष्य धर्म के यथार्थ स्वरूप की अवज्ञा और उपेक्षा करने लगता है, उस उस समय और विशेष-विशेष मानव समाज में ईश्वर देह धारण कर आविर्भूत होते हैं, एवं मनुष्य को यथार्थ धर्म का आचरण करना सिखाते हैं। (४/८)

जन्म-ग्रहण के विषय में मनुष्य को किसी प्रकार की

स्वाधीनता नहीं है, अतीत के कर्म के फलस्वरूप उसे किसी एक शरीर का आधार लेकर जन्म ग्रहण करना ही होगा। कर्म भी वह अपनी इच्छा के अनुसार नहीं कर पाता। संस्कार के द्वारा परिचालित होकर, अपनी प्रवृति के वशीभूत हो, अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे कार्य करने से वह अपने को रोक नहीं पाता। किन्तु ईश्वर को कोई अभाव नहीं है। वे किसी के वशीभूत होकर नहीं चलते। वे लीला के बहाने मानव-समाज में धर्मभाव के प्रसार के लिए देह धारण करते हैं। जो व्यक्ति ईश्वर के कार्यों से कर्म कौशल की शिक्षा ग्रहण करते हैं, तथा उस शिक्षा का अपने जीवन में अनुसरण करते हैं, उनके मन से अभिमान अहंकार दूर हो जाते हैं। उन्हें फिर जन्म-ग्रहण नहीं करना होता। वे ईश्वर की प्राप्ति करते हैं। (४/९)

ईश्वर एक, अद्वितीय, सर्वदा एकरूप और सर्व-शक्तिमान हैं। सभी देव देवी उस ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के प्रकाश मात्र हैं। ईश्वर ही समय-समय पर नाना रूपों से देह धारणकर अवतरित होते हैं। देह धारणकर, साधारण जीव की भाँति आचरण करने पर भी उनके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। अल्पबुद्धि मनुष्य ईश्वर के अवतार रूप में आविर्भाव के तत्व को समझ नहीं पाता। वह अवतार को साधारण जीव मानकर उनकी अवज्ञा और उपेक्षा करता है। (७/२४)

भक्तों पर अनुग्रह करने के उद्देश्य से ईश्वर मानवदेह धारण करते हैं। अज्ञानी जन इस तत्व की धारणा नहीं कर पाते। वे अवतार को भी अपने समान अनेक प्रकार के गुण-दोषों से युक्त जीव मानकर उनकी अवमानना करते हैं। (९/११)

☆

गीता का वास्तविक प्रयोजन : मोह-नाश

—स्वामी आत्मानन्द

—सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (मध्यप्रदेश)

गीता का वास्तविक प्रयोजन क्या है, यह प्रश्न हमारे सामने बारम्बार आकर खड़ा हो जाता है। मान लिया कि ज्ञानयोग या भक्तियोग या कर्मयोग के सहारे आत्म-साक्षात्कार या भगवान् को पाने की बात गीता में लिखी है, पर किस विशेष उद्देश्य से गीता का गायन हुआ है, इसको समझने की आकांक्षा मनुष्य करता है। और यह बात गीता की भूमिका को देखकर स्पष्ट हो जाती है। अर्जुन युद्ध करने के लिए तैयार होकर आया था। उसने कौरवों की सेना को देखने की इच्छा की और इस हेतु श्रीकृष्ण से रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर रखने को कहा। ज्योंही अर्जुन कौरवों की सेना को देखता है, त्योंही उसे जाने क्या हो जाता है और वह कहता है कि मैं यह नहीं करूँगा। कौरवों की सेना को देखकर मेरे अंग शिथिल हो जा रहे हैं। यहाँ पर 'स्वजन' शब्द अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। अर्जुन मानो कौरवों को नहीं देखता। बल्कि उनके बदले अपने रिश्तेदारों को देखता है और इसलिए वह इस ममत्व से उपजे मोह का शिकार हो जाता है। इस मोह के कारण वह उलटी-सुलटी बात करने लगता है। एक ओर तो कौरवों को आततायी कहता है और दूसरी ओर कहता है

कि आततायियों को मारकर हमें पाप ही हाथ लगेगा। यह मानो अर्जुन नहीं, उसका मोह बोल रहा है। जरा सोचिए तो, यह गाण्डीवधारी अर्जुन की कैसी दुर्दशा है! इस परीक्षा की घड़ी में उसके भीतर के दबे संस्कार अचानक उस पर धावा बोल देते हैं और वह मायूस हो जाता है। उसकी आँखों में अँधेरा छा जाता है और उसका कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य बोध लुप्त हो जाता है।

हम पर भी ऐसे प्रसंगों में ऐसी ही बीता करती है। तब हमारा भी मन मोह और प्रमाद से घिर जाता है, बुद्धि सम्मोहित हो जाती है और दिशाएँ हमारे लिए घटाटोप अन्धकार में भर जाती हैं। हम अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। यही मोह की अवस्था है। यह मोह सब कुछ भुला देता है। अर्जुन इसी व्यामोह से आक्रान्त हुआ था और भगवान् कृष्ण गीता के माध्यम से इसी मोह को दूर करने का प्रयास करते हैं। तभी तो उन्होंने अन्त में अर्जुन से पूछा (१८।६२)

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥

—'हे पार्थ! क्या तूने मेरी बात एकाग्रचित्त से सुनी? हे धनंजय! क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ? अर्जुन इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है (१८।७३)

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

—'हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआ है, और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है। अब मैं संशयरहित हो गया हूँ, और मेरी बुद्धि स्थिर हो गयी है। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

यहाँ पर हम देखते हैं कि अर्जुन का मोह नष्ट हुआ है। मोह के दूर होने से अर्जुन को स्मृति प्राप्त हुई है। इसका तात्पर्य यह है कि मोह जब चित्त में घुसता है, तब सर्वप्रथम हमारी स्मृति को ढक लेता है। हम भले और बुरे, उचित और अनुचित, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का भेद भूल जाते हैं। अतः जीवन के द्वन्द्वों के शिकार होते हैं। श्री भगवान् गीता के माध्यम से इस मोह को दूर करना चाहते हैं ताकि अर्जुन अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाय और जान ले कि उसका कर्त्तव्य क्या है।

तो हम कह रहे थे कि मोह का निरसन ही गीता का प्रयोजन है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि की बातें भी गीता में हैं, पर इन सब योगों की सार्थकता भी मोह के दूर करने में ही है। मोह-नाश गीता का मूल स्वर है। जैसे शहनाई के वादन में एक मूल स्वर बजता है और उस मूल स्वर को आश्रित करके भिन्न-भिन्न प्रकार की स्वर-लहरियाँ उत्पन्न की जाती हैं, उसी प्रकार मोह-नाशरूपी मूल स्वर को आश्रित करके विभिन्न योगों की चर्चा गीता में की गयी है।

हमने पहले कहा कि मोह-नाश से हमारी स्मृति लौट आती है और हम संशय-रहित होकर निरुद्विग्न हो जाते हैं। हमारा मन शान्त हो जाता है। मानव इस शान्ति की ही तो अथक खोज कर रहा है। उसकी समस्त क्रियाओं के पीछे इसी शान्ति का अनुशीलन है। मनुष्य शान्ति पाने की कामना करता हुआ ही अर्थोपार्जन करता है, परिवार का विस्तार करता है, पूजा-पाठ और अध्ययन-स्वाध्याय करता है। पर खेद है कि शान्ति उससे दूर ही रहती है और मनुष्य भ्रमित हो जाता है। कुछ सोच नहीं पाता कि क्या करने से उसे शान्ति मिलेगी। वह विचार करता है कि सम्भवतः परिस्थितियों में परिवर्त्तन हो जाने से उसे सुख मिलेगा। स्थान के बदल जाने से उसे शान्ति मिलेगी। ठीक यही दशा अर्जुन की हुई थी। वह सोचता है कि युद्ध एक घोर कर्म है। वह विचार करता है कि इस युद्ध को छोड़कर जंगल चले जाने से उसे शान्ति मिलेगी। इसलिए वह कृष्ण के सम्मुख वैराग्य और ज्ञान की बातें करता है। साथ ही तर्क द्वारा अपने कथन की पुष्टि भी करता जाता है। कहता है कि युद्ध से कुल का नाश होगा, कुल के नाश से सनातन कुलधर्म नष्ट हो जायेंगे और

धर्म का नाश होने पर समस्त कुल को पाप दबोच लेगा। पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी और हे वार्ष्णेय ? स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकर उत्पन्न हो जायेगा। वर्णसंकर तो कुलघातियों को और कुल को नरक में ही ले जानेवाला साबित होगा। तब तो पिण्ड और तर्पण आदि की क्रियाएँ लुप्त हो जायेंगी और फलस्वरूप इनके पितरलोक भी गिर जायेंगे।

यहाँ पर अर्जुन का ज्ञान दर्शनीय है। इससे विदित होता है कि अर्जुन कुल-नाश के दोषों का ज्ञाता है। वह पुन: कहता है—"वर्णसंकर को उत्पन्न करनेवाले इन दोषों से कुलघातियों के सनातन जातिधर्म और कुलधर्म समस्त विनष्ट हो जाते हैं। हे जनार्दन ! हमने सुना है है कि जिन मनुष्यों का कुलधर्म नष्ट हो गया है, वे अनन्तकाल तक नरक में वास करते हैं। अतएव भले ही ये कौरवगण लोभ से भ्रष्टचित्त होने के कारण कुल-नाश से होनेवाले दोष को तथा मित्रों के साथ विरोध करने में पाप को नहीं देख पा रहे हैं, परन्तु हे जनार्दन ! हमलोग जो कुल-नाश के दोष को जानते हैं, क्यों न इस पाप से हटने के लिए विचार करें ?"

और अन्त में अपने वचनों का उपसंहार करते हुए अर्जुन अपनी अत्यन्त दयनीयता को प्रकट करते हुए कहता है—"अहो ! शोक है कि हमलोग बुद्धिमान् होकर भी महान् पाप करने को तैयार हुए हैं, जो राज्य और सुख के लोभ से अपने कुल को मारने के लिए उद्यत् हुए हैं। यदि मुझ शस्त्ररहित, न सामना करनेवाले को शस्त्रधारी धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मारें, तो वह मारना भी मेरे लिए अति कल्याणकारक होगा।"

ऐसा कहकर अर्जुन ने धनुष-बाण त्याग दिया और रथ के पिछले भाग में शोकमग्न होकर बैठ गया। अर्जुन का चित्त मोहाविष्ट है, इसलिए उसका सोचना और क्रियाएँ करना—ये सभी उलटे हो रहे हैं। उसे कर्त्तव्य की दृष्टि से युद्ध करना चाहिए। पर वह युद्ध छोड़कर जंगल जाना चाहता है। जब कौरवों को वह आततायी मानता है, तो उसे उसका प्रतिकार करना चाहिए, पर कहता है कि आततायियों को मारकर पाप हाथ लगेगा। युद्ध से कुल-नाश और तत्पश्चात् पितरों के पतित होने की बात करता है, यह जानकर भी युद्ध करना क्षत्रिय का स्वधर्म है। फिर, अर्जुन यह भी जानता है कि वह लोभ और सुख की आकांक्षा से परिचालित युद्ध नहीं कर रहा है। वह जानता है कि पाण्डव अपना न्यायपूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं। वह जानता है कि दुर्योधन युद्ध के बिना सुई की नोंक बराबर भी जमीन पाण्डवों को नहीं देना चाहता है। इसके बावजूद वह कहता है कि हम लोभ और राज्य-सुख के लिए कुल का नाश करने के लिए खड़े हैं !

यही मोह की विचित्रता है। मोह से घिरकर ही अर्जुन सोचता है कि शान्ति मुझे यहाँ नहीं मिलनेवाली है। वह जंगल जाने का विचार करता है। वह समझता है कि स्थान के परिवर्त्तन से उसका अवसाद दूर हो जायेगा। तब कृष्ण अर्जुन को जंगल जाने से रोकते हैं। वे अर्जुन की करुणा को देखकर विचलित नहीं होते, न ही वे प्रभावित होते हैं। वे भाँप लेते हैं कि अर्जुन विकार-रोग का शिकार हो गया है। इसीलिए अण्ड-बण्ड बक रहा है। यदि अर्जुन के शब्दों को सन्दर्भ से अलग हटाकर विचार के लिए लें, तो उनमें कोई बेतुकापन नहीं मालूम पड़ेगा, बल्कि लगेगा कि बात तो ठीक ही है। परन्तु जब हम वस्तुस्थिति का सामना करते हैं और तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अर्जुन के शब्दों पर विचार करते हैं, तो सचमुच अर्जुन की बातें बेतुकी ही मालूम पड़ती हैं। श्री कृष्ण तो मनोवैज्ञानिक हैं, वे अर्जुन की कमजोरी को भाँप लेते हैं। वे अर्जुन को उचित औषध प्रदान करते हैं और उसे युद्ध का त्याग करने से मना करते हैं।

(लेखक की विख्यात पुस्तक 'गीतातत्त्व चिन्तन' से।

★

हिन्दू-धर्म की विशेषताएँ

(१)

—स्वामी सत्यरूपानन्द
प्रधानाचार्य, समाज सेवक शिक्षण मंदिर
बेलुड़ मठ

विश्व के रंगमंच पर आज जितने भी राष्ट्र जीवित हैं, तथा विश्व के ज्ञात इतिहास में जिन राष्ट्रों की स्मृतियां शेष हैं, हमारा राष्ट्र उन सभी से प्राचीन है। आज भी हमारे राष्ट्र की रगों में प्राणों का संचार है तथा हम एक जीवंत चैतन्य राष्ट्र के रूप में विद्यमान हैं।

विश्व का इतिहास साक्षी है कि हमारा राष्ट्र युगों तक विश्व में महान कहे जाने वाले राष्ट्रों का मार्ग दर्शन करता रहा है। यह भटकती मानवता को पथ पर लाने वाला समर्थ जगत-गुरु रहा है।

वह कौन सी विशेषता है, कौन सी शक्ति है, जिसने हमारे राष्ट्र को, हमारी जाति को महान और चिरंजीवी बनाया है? किस शक्ति की सामर्थ्य से यह राष्ट्र सहस्रों आघातों को शताब्दियों तक झेलता हुआ आज भी जीवित है, उतना ही नहीं, वरन् पुनः सामर्थ्यवान होकर अपना अद्वितीय गौरव प्राप्त करने को कटिबद्ध है? हमारा धर्म सनातन धर्म ही वह शक्ति है जो हमारे राष्ट्र को चिरंजीवी एवं असीम सामर्थ्यवान बना कर आज तक जीवित एवं चैतन्य रखा है, तथा इसी सनातन धर्म के महान उदार, उदात्त सर्वव्यापी सार्वलौकिक शाश्वत सिद्धान्त विश्व को हमारी देन है।

हिन्दू धर्म ने भारत की संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, नैतिकता, विज्ञान, समाजशास्त्र, कला, शिक्षा, राजनीति आदि जीवन के सभी क्षेत्रों को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। हमारी संस्कृति और सभ्यता का विकास ही धर्म के आधार पर हुआ है। इतना ही नहीं, हिन्दू धर्म ने विश्व के अनेक महान चिंतकों और विचारकों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है। इसका कारण यह है कि इस धर्म की छत्रछाया में मानव के मन, मस्तिष्क तथा जीवन का संपूर्ण विकास हुआ है। डाक्टर मैक्स मूलर ने इस तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है :—

"यदि कोई मुझसे पूछे कि किस क्षितिज के नीचे मानव मन ने अपने दुर्लभ गुणों का विकास किया है, जीवन की महानतम समस्याओं का आद्योपान्त निरीक्षण किया है तथा कम से कम कुछ व्यक्तियों के लिए इस समस्या का समाधान दिया है, ऐसा समाधान जिसका सम्मान वे लोग भी करते हैं जिन्होंने प्लेटो और कांट का अध्ययन किया है, तो मैं भारत की ओर इंगित करूँगा। और यदि कोई मुझसे पूछे कि कौन सा ऐसा साहित्य है जो हमें वह आवश्यक क्षमता प्रदान करता है जिसके द्वारा हम अपने आंतरिक जीवन को अधिक पूर्ण, अधिक विस्तृत विश्वव्यापी, एक शब्द में अधिक मानवी बना सकेंगे केवल इसी जीवन को नहीं किंतु एक शोधित और शाश्वत जीवन को भी इस प्रकार बना सकेंगे तो मैं पुनः एक बार भारत की ओर इंगित करूँगा"

स्वनाम धन्य इस पाश्चात्य विद्वान की यह धारणा हिन्दू धर्म के महान ग्रन्थ वेदों का अध्ययन करने के पश्चात बनी थी। बहुविध विशेषताओं से युक्त यह हिन्दू धर्म आज भी संसार के विद्वानों और चिंतकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। अतः हिन्दुओं के लिए यह अत्यन्त समीचीन है कि वे अपने महान धर्म की कतिपय विशेषताओं को स्मरण रखें तथा इनके चिंतन-मनन द्वारा अपने जीवन को उसी साँचे में ढालने का प्रयत्न करें।

हिन्दू धर्म प्रवर्तित नहीं, अनादि है

हिन्दू धर्म के अतिरिक्त संसार के अन्य जितने भी धर्म हैं उनका कभी न कभी, कहीं न कहीं, किसी न किसी

महापुरुष, मसीहा या पैगम्बर ने प्रारम्भ किया, उनकी स्थापना की। इस्लाम का प्रवर्तन हजरत मुहम्मद ने किया। ईसाई धर्म के प्रवर्तक महात्मा ईसा मसीह थे। बौद्ध धर्म का प्रारंभ भगवान बुद्ध ने किया। किंतु हिन्दू धर्म का प्रवर्तन किसी अवतार या महापुरुष ने नहीं किया है।

हिन्दू धर्म को सनातन धर्म कहा जाता है। सनातन का अर्थ है शाश्वत जो सदैव विद्यमान हो। मानव जीवन के साथ ही इस धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है। हिन्दुओं का विश्वास है कि यह सृष्टि अनादि अनन्त है अतः सृष्टि के साथ रहने वाला यह सनातन धर्म भी अनादि और अनन्त है। यह धर्म काल निरपेक्ष है, अतः हिन्दू धर्म न तो प्राचीन है न ही अर्वाचीन। यह शाश्वत, सनातन है।

हिन्दू धर्म का एक नाम वैदिक धर्म भी है. इस नाम के कारण कुछ लोगों की यह भ्रान्त धारणा बन गयी है कि वेदों के प्रारंभ काल से ही अर्थात जब से वेदों को लिपिबद्ध किया गया तभी से हिन्दू धर्म का प्रारम्भ हुआ है। इसका कारण यह है कि वे लोग ऐसा समझते हैं कि संसार के अन्य धर्म ग्रन्थों के समान ही वेद भी किसी व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा लिखे गये धर्म ग्रन्थ हैं जिनमें उन व्यक्तियों द्वारा स्थापित धर्मों के विधि निषेध आदि नियमों को लिपिबद्ध किया गया है।

संक्षेप में वेद कोई विधि निषेधात्मक ग्रन्थ नहीं है। उसमें उन ऋषियों के आध्यात्मिक अनुभवों तथा शाश्वत सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया गया है जो उन्हें इस सनातन धर्म के यथावत आचरण से उपलब्ध हुए थे।

वेद शब्द संस्कृत के विद् धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है जानना। जिन ग्रन्थों में जाने हुए या अनुभव किए हुए सत्यों का वर्णन है वे वेद कहे जाते हैं इस अर्थ में वेद सत्य की उपलब्धि का विज्ञान है, या दूसरे शब्दों में ईश्वर-प्राप्ति का विधान है। भारतीय दर्शन तथा हिन्दू धर्म के मूर्धन्य विद्वान डा० महादेवन ने लिखा है "वेद एक सार्थक नाम है जिसका अर्थ ईश्वर-ज्ञान या ईश्वर विज्ञान होता है।"

ईश्वर अनादि अनन्त हैं, अतः उनसे संबंधित ज्ञान भी अनादि और अनन्त है- अर्थात शाश्वत तथा सनातन है। इन्हीं शाश्वत तत्वों पर आधारित होने के कारण हिन्दू धर्म भी शाश्वत और सनातन है। इस धर्म की प्राचीनता के संबंध में प्राध्यापक रामदास गौड़ ने अपने विशाल ग्रन्थ हिन्दुत्व में लिखा है :

"यह हिन्दू धर्म, यह हिन्दू संस्कृति उस अत्यन्त प्राचीन काल में उत्पन्न हुई थी जब अन्य धर्मों और संस्कृतियों का गर्भाधान नहीं हुआ था, जब कल्पना ने उसका सुदूर स्वप्न भी नहीं देखा था। इसका जिस समय पूर्ण विकास हो चुका था उस समय उन अन्य धर्म और संस्कृतियों का जो आज संसार में प्रचीन हो कर अतीत हो गयी हैं, अरुणोदय हो रहा था।"

इन तथ्यों से यह स्वयं प्रमाणित है कि हिन्दू धर्म शाश्वत और सनातन है।

हिन्दू धर्म मसीहावादी नहीं, ईश्वरवादी है

अपने धर्म के अवतारों के संबंध में अनेक बार हिन्दुओं को ही ऐसी भ्रान्त धारण हो जाती है कि हमारे अवतार भी संसार के अन्य धर्मावलम्बियों के मसीहों पैगम्बरों आदि के समान ही ईश्वर के पुत्र या सन्देश वाहक हैं। किंतु हमें स्मरण रखना होगा कि हिन्दुओं के अवतारवाद तथा ईसाई, इस्लाम प्रभृति धर्मों के मसीहावाद या पैगम्बरवाद में आकाश पाताल का अंतर है। ईसाई धर्म के अनुसार महात्मा ईसा ईश्वर के अवतार नहीं हैं। वे तो ईश्वर के इकलौते पुत्र हैं, जिन्हें जगत के कल्याण के लिए ईश्वर ने संसार को दिया। ईश्वर स्वयं संसार में कभी नहीं आये और न ही आयेंगे। ईश्वर को आज तक कोई भी व्यक्ति नहीं जान पाया, नहीं देख पाया और न ही भविष्य में कभी जान पायेगा या देख पायेगा। अतः कोई भी व्यक्ति कभी भी ईश्वर से प्रत्यक्ष आदेश नहीं प्राप्त कर सकता। ईश्वर का प्रत्येक सन्देश मानव को ईश्वर के पुत्र के द्वारा ही प्राप्त होता है जो कि स्वयं ईश्वर नहीं है। अतः इस धर्म के

अनुसार पुत्र को छोड़ कर सीधे ईश्वर की खोज नहीं की जा सकती। इसीलिए इस धर्म के अनुयायियों का यह कर्त्तव्य है कि वे ईश पुत्र ईसा के उपदेशों का पालन करें तथा उनकी शरण में ही जायें। इस उपाय से ही उन्हें स्वर्ग के राज्य में प्रवेश मिल सकेगा इससे भिन्न कोई भी मार्ग हमें मुक्ति नहीं दे सकता।

इस्लाम के अनुसार मुहम्मद साहब ईश्वर के सन्देश वाहक हैं, उनके अवतार नहीं। ईश्वर का पैगाम लाने के कारण ही वे पैगम्बर कहे जाते हैं, अवतार नहीं। इस्लाम में भी ईश्वर संबंधी समस्त ज्ञान पैगम्बर साहब द्वारा ही दिया गया है तथा वही अन्तिम आध्यात्मिक सत्य है। उस पर भी किसी प्रकार की टीका नहीं की जा सकती। उससे आगे कोई शोध या गवेषणा नहीं की जा सकती। वहाँ भी मुक्ति के लिए पैगम्बर साहब के बताये हुए मार्ग से ही जाना पड़ेगा। इससे भिन्न कोई मार्ग व्यक्ति को धर्म राज्य में सफलता प्रदान नहीं कर सकता।

हिन्दुओं की अवतारवाद की धारणा इन धारणाओं से सर्वथा भिन्न है। हिन्दुओं के प्रत्येक अवतार ईश्वर के ही पूर्ण या अंशावतार हैं। अर्थात् ईश्वर स्वयं नामरूप धारण कर उस संसार में प्रकट होते हैं। हमारे अवतार ईश्वर के दूत या पुत्र नहीं है। हिन्दुओं की धारणा के अनुसार ईश्वर धर्म की स्थापना तथा अधर्म का नाश करने के लिए अवतार धारण कर इस धराधाम में आते है। गीता में भगवान कृष्ण स्पष्ट शब्दों में घोषणा करते हैं :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥
गीता अ० ४

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८॥

"हे भारत, जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मैं अपने रूप को प्रकट करता हूँ। (अर्थात् अवतार लेता हूँ)। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए एवं धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग युग में प्रकट होता हूँ।"

हमारे देश में वामनादि अवतारों से ले कर भगवान श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा हमारे युग में श्रीरामकृष्ण परमहंस तक अवतारों की एक दीर्घ शृंखला चली आ रही है। हिन्दुओं के कोई भी अवतार प्रथम तथा अन्तिम नहीं हैं। हमारे अवतारों के आने का प्रयोजन है धर्म पथ से च्युत मानव को पुनः उस पथ पर आरूढ़ करना। जब जब संसार में अधर्म, अनैतिकता, नास्तिकता आदि दोषों का प्रभाव अत्यन्त तीव्र हो जाता है तब तब भगवान युग के प्रयोजन के अनुसार अवतार ग्रहण कर संसार का त्राण करते हैं।

हिन्दू धारणा के अनुसार अवतारों के आगमन का एक प्रयोजन है आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अपने जीवन में आचरण कर उनकी व्यावहारिकता को प्रमाणित करना। हमारे वेदों, उपनिषदों आदि में जिन आध्यात्मिक सत्यों तथा अनुभूतियों का वर्णन है वे सभी तत्व हमारे अवतारों के जीवन में विभिन्न रूपों में प्रकट हुए हैं। यही कारण है कि स्मृति पुराण आदि में यदि कहीं श्रुति विरुद्ध कोई बात कही गयी हो तो उसे हिन्दू साहस पूर्वक अस्वीकार करता है।

हिन्दुओं के अवतार सर्वथा मानवीय पहुँच के भीतर हैं। जब जब भगवान का अवतार हुआ है, वे सदैव अपने भक्तों के संग रहे हैं, उनके साथ व्यवहार किया है, उनसे सम्बन्ध रखा है तथा उन्हें धर्म जीवन की ओर प्रेरित किया है। मनुष्य के सबसे निकट यदि कोई है, तो वह ईश्वर ही हैं। अतः ईश्वर के अवतार भी हमारे निकटतम स्वकीय हैं। व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार किसी अवतार को स्वीकार कर उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण करते हुए सत्य की उपलब्धि कर सकता है। हमारा अवतारवाद उदात्त, विशाल एवं सर्वग्राही है। उसमें सभी पंथों, मतों एवं मान्यताओं के लिए

स्थान है।

हिन्दू धर्म अध्यात्मवादी है, जड़वादी नहीं

हिन्दू धर्म मूलतः आध्यात्मवादी है। आध्यात्मिकता और धर्म हिन्दू के लिए पर्यायवाची हैं। आध्यात्मिकता रहित किसी धर्म की कल्पना हिन्दू मानस कभी कर ही नहीं सकता। हिन्दू की दृष्टि में समस्त ब्रह्माण्ड ईश्वरमय है—ईश्वर से ओतप्रोत है। इसीलिए जड़ जगत के पीछे की इस आधारभूत आध्यात्मिक सत्ता के अनुसंधान तथा अनुभव को हिन्दू मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य मानता है एवं उसके अनुरूप ही अपने जीवन चक्र की व्यवस्था करता है। प्रसिद्ध ईशावास्य उपनिषद् में ऋषि घोषणा करते हैं।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेना त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥१॥

"अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़ चेतन जगत है, वह समस्त ईश्वर से व्याप्त है, उस ईश्वर को ग्रहण कर त्याग पूर्वक इस जगत का भोग करो। इसमें आसक्त मत होओ क्योंकि धन किसका है? अर्थात किसी का नहीं।"

हिन्दू धर्म हमें यह बताता है कि यह दृश्य जड़-जगत् नाशवान है अतः यह अंतिम सत्य नहीं हो सकता। किन्तु इस दृश्य जगत् के पीछे आश्रय स्वरूप जो चैतन्य सत्ता है वह अनश्वर और शाश्वत है। अतः वही वस्तुतः सत्य है। वही इस जगत् के अस्तित्व का कारण है। उससे ही यह समस्त सृष्टि प्रकट हुई है तथा उसी में इसका लय भी होता है। मुण्डक उपनिषद में कहा गया है:—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥७॥ १।१ मुण्डक

"जिस प्रकार मकड़ी स्वयं अपने जाले को बनाती है तथा निगल जाती है; जिस प्रकार पृथ्वी में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, जिस प्रकार जीवित पुरुष से केस और रोएँ उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से यहाँ सब कुछ उत्पन्न होता है।"

सृष्टि के आदि कारण का संधान करने के लिए हमें इस जड़ जगत को भेद कर उसके पीछे की चैतन्य सत्ता का अनुभव करना होगा। उसका ज्ञान प्राप्त कर लेने पर संसार में कुछ अज्ञात नहीं रह जाता। यही कारण है कि हिन्दू धर्म व्यक्ति को सत्य का संधान करने के लिए अन्तर्मुखी होने का उपदेश देता है तथा उसे बताता है कि तुम जड़ जगत के दास नहीं, उसके स्वामी हो। तुम्हें स्वामी की भाँति उसका उपयोग तथा उपभोग करना चाहिए। इन्द्रियों के दास हो कर कभी भी इस जड़ जगत के आधीन नहीं होना चाहिए।

हिन्दू धर्म हमें बताता है कि जड़ जगत को ही सत्य मान कर उसमें सुख और शांति ढूँढ़ना पानी को मथ कर उसमें से मक्खन निकालने की चेष्टा के समान है। ऐसा करने पर मनुष्य अधिकाधिक जड़ जगत का दास ही होता जाता है और दुःख तथा अशांति के अतल गर्त में पड़ जाता है। आधुनिक पाश्चात्य देश इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन देशों ने भौतिक जगत को ही अंतिम सत्य मान कर जड़ जगत के अन्वेषण और अनुसंधान में ही अपनी समस्त शक्तियों को लगा दिया है। निस्संदेह इसके कारण उन देशों ने प्रचुर भौतिक सुविधाएँ एवं शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं। किन्तु इतना होते हुए भी वहाँ व्यक्ति सुखी और शांत नहीं है। भय तथा आशंका से उन देशों का व्यक्ति और समाज पीड़ित एवं प्रताड़ित है।

हिन्दू धर्म से भिन्न कई अन्य धर्म भी प्रकारांतर से भौतिक वादी ही कहे जाएँगे। क्योंकि वे मनुष्य को मृत्यु के पश्चात एक ऐसे स्वर्ग की प्राप्ति का आश्वासन देते हैं जहाँ संसार के ही सुख सहस्रगुण तथा दुःख रहित हो कर दीर्घ काल तक प्राप्त होते रहेंगे। वे धर्म मनुष्य को धर्माचरण का आदेश इसलिए देते हैं कि मरने के पश्चात उसे स्वर्ग मिलेगा। किन्तु हिन्दू धर्म स्वर्ग को भी

इस पृथ्वी के ही समान क्षणभंगुर और इसलिए त्याज्य मानता है। हिन्दू धर्म मनुष्य को स्वर्गसुख का प्रलोभन नहीं देता, वह तो उसे अपवर्ग के सभी सुखों का त्याग कर अखण्ड, अनादि, अनन्त आत्मानन्द में अवस्थित होने का आह्वान करता है। यही हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता है। उसकी गुरुता और गौरव है।

(अगले अंक में समाप्य)

□

साधना के अंतराय

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

श्रेयांसि बहुविघ्नानि

युद्ध में जब सेनाएँ आगे बढ़ती हैं, तो उन्हें लड़ने के अतिरिक्त एक और कार्य करना पड़ता है। रास्ते में उपस्थित रोड़े हटाने, खाई और खन्दक पाटने, नहरों और नदियों पर पुल बनाने और सुरंगों को हटाना पड़ता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक संग्राम में भी प्रमुख युद्ध के अतिरिक्त साधक को अनेक बाधाओं एवं रोड़ों का सामना एवं उन्हें दूर करना पड़ता है, जो अनिवार्य रूप से उसके मार्ग में उपस्थित हो जाते हैं। साधना पथ बाधारहित कभी भी नहीं होता।

साधना की बाधाएँ या अन्तराय राग-द्वेष, अहंकार, अज्ञानादि प्रमुख क्लेशों से भिन्न हैं। अविद्यासहित उसके राग द्वेषादि परिणाम मुक्ति-मार्ग के साधक के प्रमुख शत्रु हैं, जिन्हें जीतना लक्ष्य है; जबकि आलस्य, प्रमाद संशयादि मार्ग की बाधाएँ हैं। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक साधक को सभी प्रकार की प्रत्येक बाधा का सामना करना पड़े, फिर भी उनके बारे में जानना आवश्यक है जिससे उनके उपस्थित होने पर उन्हें पहचान कर दूर किया जा सके।

यह आवश्यक नहीं कि साधना-पथ बाधारहित हो। यही नहीं, न्यूनाधिक मात्रा में बाधाओं का रहना अनिवार्य एवं उपयोगी भी है। जिस प्रकार मल्ल विद्या सीखते समय पहलवान गुरु चेले से लड़ता है, तथा क्रमशः उससे कठिन से कठिनतर अभ्यास करवाता है, उसी प्रकार बाधाओं के साथ संघर्ष करने में साधक की शक्ति वर्धित होती है, तथा ये रोड़े ही, उसकी उच्चतर प्रगति के सोपान बन जाते हैं। बाधाओं का उपयोग कर उन्हें साधना में सहायक बनाने की कला साधक को सीख लेनी चाहिए।

अन्तरायों के कारण—साधना के अन्तरायों के चार प्रमुख कारण हैं।

(1) कुछ बाधाएँ तो हमारे स्वभाव में ही निहित हैं। क्षुधा, पिपासा, निद्रा आदि शरीर के ऐसे प्राकृतिक नियम हैं जिनकी पूर्ति करना आवश्यक होता है। इनपर विजय पाना तथा ऐसा उपयोग करना कि वे साधना में कम से कम बाधक हों, आवश्यक है।

(2) दूसरे प्रकार की बाधाएँ साधना की प्रतिक्रियाओं के रूप में पैदा होती हैं। अनभ्यस्त शरीर और मन साधना के विरुद्ध विद्रोह सा कर बैठते हैं। मानसिक जड़ता, ध्यान, भजन में अरुचि, वासनाओं आदि का प्राबल्य इसी प्रकार की बाधाएँ हैं। जो लोग

वह कोलाहल के बीच भी अपने मन के एक भाग को उस शान्ति के साथ संयुक्त रख सकता है, जिसका अनुभव वह कोलाहल रहित क्षणों में करता था। वस्तुतः शोर की समस्या का यही एक प्रभावशाली समाधान है, क्योंकि बाह्य परिस्थितियों पर हमारा कोई वश नहीं है। हम स्वयं को परिवर्तित कर बाह्य परिस्थिति से ऊपर उठ सकते हैं।

एकान्त का अभाव—श्रीरामकृष्ण का कथन है कि : ध्यान करो मन में, वन में, कोने में। गुफा, वन, पर्वत आदि निर्जन स्थान ध्यान के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इनके अभाव में हमें अपने परिवेश के बीच ही अपेक्षाकृत निर्जन स्थान खोजना होगा। यदि व्यक्ति सचमुच निर्जन का इच्छुक है तो व्यस्त जनाकीर्ण महानगरों में भी निर्जन, सुरम्य ध्यानोपयोगी स्थान पा जायेगा। अपने घर के एक कमरे में, अथवा कोने में हम उस निर्जन को स्थापित कर सकते हैं। और अगर यह भी सम्भव न हो तो हृदय रूपी मन्दिर में अपने इष्ट का ध्यान जन समाज के बीच रहते हुए भी अभ्यास द्वारा किया सकता है। सीना की ईसाई महिला सन्त केथेरीन को उनके पिता एकान्त में ध्यान करने नहीं देते थे। उन्हें वे जबरदस्ती लोगों के बीच काम में व्यस्त रखते थे। लेकिन सन्त केथेरिन चुपचाप अपने हृदय में अपने प्रियतम भगवान का ध्यान करती रहती थी।

ऐसे स्थान भले ही कम हों, लेकिन इनका नितान्त अभाव कभी नहीं होता। एक छोटा सा देवालय, सरोवर या नदी का किनारा, नगर से किंचित दूरी पर स्थित मैदान अथवा निर्जन भवन आदि खोज करने पर पाये जा सकते हैं, जहाँ बीच-बीच में जाकर ध्यान किया जा सकता है। अगर एकान्त पाना नितान्त आवश्यक है तो अपनी साधना पद्धति में परिवेशोपयुक्त परिवर्तन करना चाहिए। अर्जुन एवं श्रीकृष्ण रणभूमि में युद्धोन्मुख सेनाओं के बीच उच्चतम दर्शन की चर्चा एवं क्रियान्वयन कर सके थे तो क्या हम कम से कम कुछ अंश में ऐसा नहीं कर सकते? हमारे निकट के लोगों में भगवान को देखना, स्वयं के आत्मस्वरूप को विवेक द्वारा देहेन्द्रियादि की क्रियाओं से पृथक करना, साक्षी भाव का विकास आदि ऐसी पद्धतियाँ हैं जिनके द्वारा हम इस कोलाहलमय व्यस्त आधुनिक समाज में रहते हुए भी लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं। इसी तरह कोलाहल एवं जनसमाज में भी अपनी अन्तर्मुखी वृत्ति बनाये रखना, एवं सन्तुलन न खोना अपने आप में एक साधना है। ऐसा करने में समर्थ साधक एकान्त में ध्यान के लिए बैठने पर अपने मन को शीघ्र शान्त करने में सफल होगा। उसे अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा।

शीतोष्णादि द्वन्द्व—अत्यधिक गर्मी, वर्षा, तूफानादि प्राकृतिक प्रकोप भी जीवन में अनिवार्य हैं। इनसे कुछ हद तक तो स्वयं की रक्षा की जा सकती है, लेकिन पूरी तरह छुटकारा पाना असंभव है। इनके प्रतिकार का एकमात्र उपाय है, तितिक्षा। तितिक्षा कवच की तरह मुमुक्षु साधक की अनेक बाधाओं से रक्षा करती है।

> रक्षा तितिक्षा सदृशी मुमुक्षोः
> न विद्यते पविना न भिद्यते।
> यामेव धीराः कवचीय विघ्नान्
> तृणीकृत्य सर्वान् जयन्ति मायाम्॥

अतः इन बाह्य व्यवधानों से स्वयं को कभी भी विचलित नहीं होने देना चाहिए।

बासना-बूढ़ी-श्रीमाँ के घनिष्ठ सान्निध्य में

"चुकचुक"
एम०बी०बी०एस० छात्रा, बेलगाँव (कर्नाटक)

"कामारपुकुरेर माटी एकेबारे छेड़ो ना——

अर्थात् ससुराल की इस कुटिया को त्याग मत देना वही शाक-पात बोना.....और भगवान का नाम जपती रहना—कभी तो ठाकुर श्री रामकृष्ण ने कहा था श्री माँ से।

फिर और क्या? पति की इच्छा ही माँ के लिए आदेश था। कितने ही दिन ऐसे बीते कि सिर्फ नमक से सानकर ही चावल खाना पड़ा—किन्तु कामारपुकुर माँ ने नहीं छोड़ा। जब कि शहर कलकत्ता का अतिरेक स्वाच्छन्द्य और स्वामी योगानन्द तथा शरत् महाराज जैसे बेटों की साग्रह सेवा उन्हें बार बार आह्वान करती थी। अन्त में हारकर स्वामी सारदानन्द ने सोचा कि चलो, कामारपुकुर के श्वसुरगृह में ही माँ को यदि कुछ अतिरिक्त आराम-विश्राम की व्यवस्था की जा सके।

तभी एक दिन.....

माँ बगल के हालदार-पुकुर में नहाने गयी थी। लौटते समय पीतल के घड़े में एक घड़ा पानी भी ले आती तो दिनभर एकमात्र प्राणी के पीने का काम चल जाता। पर शरीर की शक्ति क्षीण हो चुकी थी.....कभी तो गाँव की मलेरिया और ऊपर से रक्त आमाशय? जलपूर्ण घड़ा कमर तक उठाने की भी क्षमता नहीं रह गयी थी। तभी वासना पास आयी—सात। आठ साल की होगी यह लड़की—पर वैधव्य ने इसका भाग्य अंधकारपूर्ण कर दिया था। कभी कभी एक-दो सेर चावल लाया करती थी पोटली में बाँधकर—बेचने के लिए। माँ उसी से हफ्ता भर रघुनाथजी का भोग लगाती और खुद भी प्रसाद लेती। "वासना" को देखकर माँ को जैसे सहारा मिल गया—

"बेटी। जरा हाथ तो लगा दे। भारी घड़ा उठाया नहीं जा रहा मुझसे।"

और उसी दिन से माँ ने उस लड़की को रख लिया अपने साथ। दीन-दुखिया 'वासना" का भी कोई नहीं था इस दुनिया में। दोनों को एक-दूसरे का सहारा मिल गया। स्वामी सारदानन्द भी उसवार कलकत्ता से आये तो लड़की की पक्की व्यवस्था कर गये, माँ के पास।

—'दिन भर ठाकुरमाँ (दादी अर्थात् श्रीमाँ) के छोटे-मोटे कामों में हाथ बँटाती रहती मैं। रात को उनके घुटने में दर्द का तेल लगा दिया करती। एक दिन की बात है..... ... (कहते कहते पुरानी यादों में खो-सी गयी अभी की "वासना-बूढ़ी") गाँव की सीमा में दुर्गापूजा के ढाक की आवाज सुनाई पड़ रही थी। मैंने हठ किया—

"ठाकुरमाँ? ले चलो न?"

माँ ने रात को कुछ खाया नहीं था। तबीयत ठीक नहीं थी। बरामदे में आँचल बिछाकर लेटी थी। मुझसे कहा—

—"ओई दिके देख"—अर्थात् देवीप्रतिमा की तरफ मुँह करके खड़ी तो हो जा (और फिर वासना-बूढ़ी के शरीर में रोमांच हो आया कहते-कहते)... ...दुर्गा माँ जैसे आँगन पर ही दिखाई पड़ी – चारों तरफ दिव्य उजाला छा गया....."

माँ के सेवा-स्पर्श-सुख से धन्य इस बुढ़िया के पैरों को छूकर जब मैं उठने लगी तो वह अपने मन में ही बुदबुदाती हुई हिसाब लगा रही थी "मेरी उम्र? शायद नब्बे की? ना ना शायद ९५।" माँ की यह जीवित सहचरी अभी कामारपुकुर में भक्तों का आकर्षण केन्द्र बनी हुई है। विदेशी भक्त-दर्शकगण अपनी रंगीन-मूवी—कैमरा से इसकी दिनचर्या का कुछ अंश, खींचकर स्मृति-स्वरूप ले जाते हैं। पर इसे कोई बोध नहीं। मानो सारी दुनिया पर विरूप है। माँ के साथ रहकर दुःख के दिन देखे हैं इसने। अपने आप बड़बड़ाती है:—

—"दुर दुर, अभी माँ को राजभोग खिला रहे हैं और तब? शाक-भात की भी कंगाली? अभी तो बनारसी साड़ी। तब तो फटी धोती में इनकी गाँठें बाँधते थक जाती थी मैं। □

धारावाहिक

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

"एक दिन* उन्होंने राखाल बाबू को मेरे साथ कुश्ती लड़ते देखा। राखाल बाबू पहले कुश्ती लड़ा करते थे। अच्छा सुगठित शरीर था। पहले वे अम्बू बाबू के अखाड़े में जाया करते थे। कुश्ती में राखाल बाबू मुझे मिट्टी से नहीं लगा पाते थे, मैं भी उन्हें नहीं गिरा पाता था। इसे देख ठाकुर बोले—'अरे! तुम लोगों में तो गज-कच्छप जैसा युद्ध चल रहा है, कोई किसी को हरा नहीं पा रहा है, दोनों बराबरी के हैं।'"

इस प्रसंग को सुनने के बाद एक भक्त ने पूछा—"महाराज, ! दक्षिणेश्वर में क्या आप हमेशा कुश्ती लड़ते थे ?"

लाटू महाराज—"नहीं, हमेशा नहीं लड़ता था। उनके मना करने के बाद से मेरा लड़ना बन्द हो गया।"

भक्त—"उन्होंने मना क्यों कर दिया, महाराज ?"

लाटू महाराज—"मेरा शरीर बड़ा दुर्बल होता जा रहा था, उसी को देखकर उन्होंने कहा, 'अरे! इतना दुबला हुआ जा रहा है, अब ज्यादा कसरत न करना। खूब ध्यान के साथ खूब कसरत करना अच्छा नहीं। दोनों में आधिक्य करने से सब चौपट हो जाएगा।' उसके बाद से मैंने कुश्ती लड़ना छोड़ दिया। बीच-बीच में थोड़ा धक्कामुक्की कर लेता था।"

"उनकी बीमारी के समय एक दिन महिन्दर कविराज (श्री महेन्द्रनाथ पाल) उन्हें देखने आये। लौटते समय वे रामलाल (दादा) के हाथ में पांच रुपये देते गये। उन्हें (ठाकुर) कुछ भी मालूम नहीं था। उस दिन रात को मैंने देखा कि वे बिस्तर पर पड़े छटपटा रहे हैं। मैंने काफी देर तक उन्हें हवा की, पर उनकी छटपटाहट कम नहीं हुई। आखिरकार उन्होंने मुझसे कहा—'जा तो, रामलाल को बुला ला, उस मूर्ख ने अवश्य ही कुछ (गड़बड़) किया होगा, नहीं तो फिर मुझे रात में नींद क्यों नहीं आती ?' उस समय रात के एक या दो बजे थे। मेरे रामलाल (दादा) के बुलाकर लाते ही ठाकुर ने उनको कहा—'जा मूर्ख जा, यहाँ के (मेरे) लिये जिससे रुपये लिये हैं, जल्दी जाकर लौटा आ।' रामलाल (दादा) ने तब ठाकुर को सबकुछ बताया। उसी रात रामलाल (दादा) मुझे साथ लेकर कविराज महाशय के घर गये, उन्हें नींद से उठाकर रुपये लौटा दिये, समझे ?

"उनकी बीमारी के समय दक्षिणेश्वर में एक दिन भवनाथ, राखाल, लोरेन तथा अन्यान्य भाइयों ने मिलकर एक बड़े हण्डे में खाना पकाया था। सभी खाना शुरू ही करने वाले थे कि एक बाऊल* आकर हमारी पंगत में बैठ गया। ठाकुर ने उसे देखा और पंगत से उठा दिया। लोरेन बाबू ने कहा—'वह बैठे न, बहुत है, हो जाएगा।' ठाकुर ने इस पर कहा—'नहीं, नहीं,

*यह घटना हाथ टूटने के काल की है।

*वैष्णव सम्प्रदाय के एक तरह के वैरागी, जो भजन गाते हुए घूमते और भिक्षा माँगते हैं।

ऐसा नहीं हो सकता, तुमलोगों का खाना हो जाने पर यदि कुछ बचा तभी उसे मिलेगा। तुम लोगों के साथ वह नहीं खाएगा।' खाना हो जाने पर उन्होंने हम सबसे कहा—'देखो! वह क्या इतना भाग्यवान है कि तुम लोगों के साथ बैठकर खा सके? साधना काल में जिस तिस के साथ खाना उचित नहीं।'''

"एक बार राम बाबू उनके लिए एक टोकरी जलेबी ला रहे थे, परन्तु रास्ते में उन्होंने उसमें से एक किसी को दे दिया था। ठाकुर उस दिन राम बाबू की जलेबियाँ मुख में नहीं डाल सके, और बोले—'देखो राम! यहाँ के लिए जब लाना, तो उसमें से (पहले) किसी को मत देना। जिस चीज का अग्रभाग दूसरे को देना हो गया है, उसे क्या माँ को निवेदन किया जा सकता है? जानते हो न, माँ को निवेदन किये बिना मैं कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता' "

"उनकी बीमारी के दिनों में एक बार तारक बाबू (स्वामी शिवानन्द) दक्षिणेश्वर आये—वृन्दावन से चने, रज, तिलक-मृत्तिका, माला आदि सब लाये थे। ठाकुर के हाथ में तख्ती बँधी देखकर बोले—'आपके हाथ में क्या हुआ है?'' ठाकुर ने हँसते हुए उनसे कहा—'चाँद मामा को देखने गया था और तार में अटक कर गिर पड़ा; हाथ में थोड़ी सी चोट आ गयी, अब भी उसका बकाया चल रहा है।' तारक बाबू ने पुनः पूछा—'हड्डी खिसकी भर है या टूट गयी है?' ठाकुर ने इस पर कहा—'पता नहीं भाई! क्या हुआ है? उन लोगों ने सब चारों तरफ से बाँध दिया है। थोड़ा आराम से माँ को पुकारूँ, इसका भी उपाय नहीं। यह सब बैण्डेज आदि खोलने भी नहीं देते। बोलो तो, ऐसा सब बाँधने पर क्या माँ को पुकारने की इच्छा होती है? कभी कभी मन में आता है—घत्तेरे-की यह बाँधना-बूँधना, सब काटकर निकल जाऊँ; फिर मन में आता है—नहीं, यह भी एक तरह का अच्छा खेल चल रहा है, इसमें भी मजा है।' यह सब सुनकर तारक बाबू ने कहा था—'आप तो इच्छा मात्र से ही अच्छे हो जा सकते हैं।' ठाकुर ने इस पर कहा—'आँ! इच्छा मात्र से ही ठीक हो जा सकता हूँ?' यह कहकर वे कुछ देर तक मौन रहे, फिर कहने लगे—'नहीं! रोग का भोग करना ही अच्छा है, यहाँ पर जो लोग कामना आदि लेकर आ रहे हैं, वे इसी को देखकर भाग जाएँगे, मुझे ज्यादा तंग नहीं करेंगे।' दूसरे ही क्षण कहने लगे, 'माँ! तूने यह अच्छा कौशल किया है।' इसके बाद ही उन्होंने भजन गाना आरम्भ कर दिया और गाते गाते उन्हें समाधि लग गयी।"

"दक्षिणेश्वर में एक दिन बड़े ही संसारी व्यक्ति उनके कमरे में आकर वैषयिक बातें करने लगे। इसे सुनकर ठाकुर ने कहा—'यहाँ पर ये सब बातें न करो, (दफ्तर की ओर संकेत कर) वहाँ जाओ।' वह व्यक्ति उनके कहने पर उधर चला गया। तब ठाकुर ने मुझसे कहा—'अरे उस कोने में गंगाजल रखा है, थोड़ा छिड़क दे न। साला काम-कांचन का दास है! उस जगह पर बैठकर वहां की सात हाथ मिट्टी अपवित्र कर गया। अच्छी तरह गंगाजल छिड़क दे!''

"एक दिन गिरीश बाबू नशे में धुत होकर दक्षिणेश्वर आये हैं, यह देख उन्होंने मुझसे कहा—'जा देख आ, गाड़ी में कुछ छोड़कर तो नहीं आ गया। कुछ पड़ा मिले तो यहाँ ले आना। समझे!' मैंने गाड़ी में जाकर देखा तो एक बोतल शराब थी और एक गिलास भी था। दोनों चीजें लेकर मैं कमरे में लौट आया। मेरे हाथ में मद्य की बोतल देखकर कमरे में उपस्थित सारे भक्त हँस उठे। यह देखकर उन्होंने कहा—'इन चीजों को रख दे। होश में आने पर जरूरत पड़ेगी।' देखो न, भक्तों के प्रति वे कैसे उदार थे!"

"एक दिन गिरीश बाबू दाना काली (श्री कालीपद घोष) को साथ लेकर रात में दक्षिणेश्वर आये। दाना-काली बड़ा नशेबाज था, घर में पैसा-कौड़ी कुछ भी नहीं देता था, सब कुछ शराब में उड़ा देता था। परन्तु उसकी पत्नी बड़ी सती-साध्वी थी। बहुत दिनों

पूर्व एक बार ठाकुर के पास वह आयी थी, ऐसा सुना* है कि दानाकाली की पत्नी ने ठाकुर से अपने पति का मन ठीक करने के लिये दवा माँगी थी। परन्तु ठाकुर ने दवाई न देकर उन्हें माँ (श्रीमाँ सारदा) के पास भेज दिया था। माँ ने उन्हें वापस ठाकुर के पास भेजा। इस प्रकार उन्हें तीन बार इधर से उधर जाना पड़ा था। अन्त में माँ के पास से उन्हें थोड़ा कुछ मिला। माँ ने पूजा के एक बिल्वपत्र पर ठाकुर का नाम लिख कर दानाकाली की पत्नी को दिया था और उन्हें खूब जप करने की सलाह दी थी। माँ के कहने पर दानाकाली की पत्नी ने बारह वर्ष तक जप किया था। इसीलिए ठाकुर ने दानाकाली को देखते ही कहा था—'बहू को बारह साल तक कष्ट देकर तब यहाँ आये।' इस बात पर दानाकाली चौंक उठा, पर कहा कुछ भी नहीं। यह देख वे फिर बोले—'बोलो जी, तुम्हें क्या चाहिए?' दानाकाली भी इतना दुष्ट था कि उनसे बोला—'थोड़ा मद्य दे सकेंगे?' ठाकुर हँसकर बोले—'हाँ, दे सकूँगा, पर यहाँ के मद्य का नशा बड़ा तेज होता है, तुम सह नहीं सकोगे।' दानाकाली ने सोचा कि लगता है यहाँ सचमुच ही सुरा मिलती है, इसलिए बोला—'शुद्ध विलायती सुरा है क्या? तो वही दे दीजिए थोड़ा सा, गला तर कर लूँ।' ठाकुर हँसते हुए कहने लगे—'अजी वह विलायती सुरा नहीं है जी, विलायती सुरा नहीं है। शुद्ध देशी मदिरा है। यह मद्य जिस-तिस को नहीं दिया जाता। सभी इस सुरा को सहन नहीं कर पाते। यहाँ की सुरा पी लेने पर फिर विलायती मदिरा अच्छी नहीं लगती। क्या तुम उस सुरा को छोड़कर यहाँ की सुरा शुरू करने को राजी हो?' दानाकाली ने न जाने क्या सोचा, बाद में मैंने उसे कहते सुना—'वही सुरा मुझे दीजिए जिसे पीने पर मैं सारा जीवन नशे में डूबा रह सकूँ।' इसके बाद ही ठाकुर ने उसे स्पर्श कर दिया। उनके छूते ही दानाकाली खूब रोने लगा। सब मिलकर भी उसे चुप न करा सके थे।.... उसी दानाकाली की जिह्वा पर एक दिन गंगा में नाव पर जाते हुए ठाकुर ने इष्ट-मंत्र लिख दिया था। बाद में वह ठाकुर का बहुत बड़ा भक्त हो गया था, उनकी सेवा के लिए बहुत रुपये दिये थे। ...जानते हो पत्नी यदि सती-साध्वी हो तो वह पति के लिए तपस्या करने में पीछे नहीं हटती। पत्नी के कारण काली का उद्धार हो गया।"

"हाथ ठीक हो जाने पर एक दिन वे अहीरीटोला में सार्वजनिक पूजा देखने गये थे। गाड़ी में बैठकर जाते हुए रास्ते में उन्होंने दो-चार महिलाओं को देखा जो खूब सज-धज कर अपने दरवाजों पर खड़ी थीं। उन्हें देखकर वे कहने लगे—'माँ! खूब सजी हो तुम!' ...बस, इतना कहते कहते ही उन्हें भावावेश हो गया। साथ के लोगों ने समझा कि उन्हें चक्कर आ गया है। अतः मेरे लिए चीख-पुकार शुरू कर दी और गाड़ीवान को गाड़ी रोकने का आदेश दिया। कुछ देर बाद ही उनकी समाधि भंग हुई और उसके बाद मैंने पुनः गाड़ी चलाने को कहा।"

"एक अन्य दिन की बात है। उस दिन कलकत्ते के एक भक्त (श्री भूपतिचरण चट्टोपाध्याय) दक्षिणेश्वर आये। ठाकुर उस समय तेल मल रहे थे। उन्होंने आते ही एक भजन गाना शुरू कर दिया। (भजन की दो पंक्तियाँ एक दूसरे भक्त ने हमें बतायी थी)—(भावार्थ)

'हरि के समान नाविक दूसरा कौन होगा? दयालु प्रभु हमें सुन्दर चरणद्वय रूपी नाव में पार लगाते हैं।' भजन सुनकर ठाकुर भावावेश में आ गये और उनके कन्धों पर चरण रखकर बोले 'यह लो, यह लो।' "(क्रमशः)

*लगता है लाटू महाराज तब तक दक्षिणेश्वर नहीं आये थे।

पुस्तक-समीक्षा

"एक विश्व' के निर्माण में हिन्दू धर्म की भूमिक" :: स्वामी मुख्यानन्द:: अनुवादक... डॉ० सुरेश चन्द्र शर्मा: विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, १९८७:: मूल्य —२·५०.

स्वामी मुख्यानन्द की अंग्रेजी में लिखित पुस्तक "रोल ऑफ हिन्दुइज्म 'इन वन वर्ल्ड' आइडियल" का हिन्दी अनुवाद डॉक्टर सुरेश चन्द्र शर्मा ने "एक विश्व' के निर्माण में हिन्दू धर्म की भूमिका" नाम्नी पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर उन जिज्ञासुओं का उपकार किया है जो अंग्रेजी के सम्यक् ज्ञान के अभाव में स्वामीजी के सारगर्भित अभिलेख का आस्वादन करने में असमर्थ हो जाते। अनुवाद की कृतियाँ अनुवादक की सीमाओं का परावर्तन करती हैं और प्रायः अनुवादक के सीमा संकुचन का प्रभाव ही अनूदित कृतियों में दिखायी देता है। किंतु, प्रस्तुत पुस्तक की अभिव्यक्ति तथा भाषा अपनी प्रांजलता के उत्कर्ष के कारण गम्भीर और गूढ़ तथ्यों से परिपूर्ण स्वामी जी के संदेशों को सहज-सरल-प्राकृतिक ढंग से पाठक के अन्तर में उतार सकने में सक्षम है। शब्दकोश से आयातित अर्थों की शक्ति से यदि अनुवादक अपना कार्य करते हैं तो, अनूदित कृति का मूल कृति से संबंध विच्छेद हो जाता है। भाषा की लय को शब्दकोश की सहायता से नहीं रूपांतरित किया जा सकता तथा शब्दों का अर्थ-बोध भी शब्दकोश की सहायता से अनूदित नहीं हो सकता। किंतु, स्वामीजी की मूल अंग्रेजी अभिव्यक्ति के मर्म को शब्द-बोध के स्तर पर डा० सुरेशचन्द्र शर्मा ने अपने अनुवाद में सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

स्वामी मुख्यानन्द का चिंतन और अनुशीलन आर्ष है तथा स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त प्रणीत हिन्दू धर्म के विश्व ऐक्य-अभिप्रेत वाले दर्शन का मीमांसक एवं परिचायक है। वर्त्तमान युग की त्रासदी का निदान ढूँढने की जितनी भी राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक चेष्टाएँ हुईं उनसे भले ही आधुनिक मानव की भौतिक सबलता बढ़ी है, किंतु जीवन के आंतरिक उच्चादर्श,अभीप्साएँ तथा नैतिक-आध्यात्मिक-सौन्दर्यपरक मूल्य क्षयग्रस्त ही हुए हैं। परिणामतः आज मनुष्य की अस्मिता एक क्षमतायुक्त भोगवादी मनोभौतिक यंत्र की हो गयी है।

जगत एवं इसकी गतिविधियों को समझने के जड़वादी दृष्टिकोण में जगत अनात्म जड़वस्तु प्रतीत होता है जिसमें प्राणी एवं पदार्थ स्वार्थों से ही जुड़े-बंधे होते हैं। जड़वादी दृष्टिकोण हिन्दू धर्म की विराट परिकल्पना का समीचीन आकलन नहीं कर पाता। वेदान्त-प्रणीत हिन्दू धर्म जगत को अनन्त आध्यात्मिक सत्य से उद्भूत एक अखण्ड चैतन्य सत्ता मानता है जिसमें समस्त पदार्थ और प्राणी अन्योन्याश्रित रूप से उस पूर्ण सत्य में ही निहित होते हैं। एक विश्व की परिकल्पना वेदान्त प्रणीत हिन्दू धर्म की उदात्त एवं विराट परिकल्पना द्वारा ही बोधगम्य तथा मूर्त हो सकती है।

स्वामी मुख्यानन्द ने वास्तविक धर्म को आध्यात्मिक मूल्यों का संस्थापक मानते हुए उसे आभ्यंतरिक देवत्व को उजागर करने वाला बताया है। किंतु, आधुनिक मनुष्य की अज्ञानताजनित धर्मविमुखता चिंतनीय है। आधुनिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय करने की असीम क्षमता वेदान्त प्रणीत हिन्दू धर्म में ही है, जो सनातन धर्म है, पूर्णरूपेण समाहारात्मक, स्वीकारात्मक, गत्यात्मक, गवेषणात्मक एवं विश्वात्मक।

वस्तुतः हिन्दू धर्म अपनी प्रकृति एवं प्रवृत्ति से वैज्ञानिक तथा गत्यात्मक है जिसका आधार है वेद, जो अध्यात्म-वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न देश-काल में किये गये आध्यात्मिक अनुशीलन का आलेख है, संकुचित अर्थ में जो शास्त्र नहीं। सम्पूर्ण सृष्टि के एकत्व की शिक्षा वेद में निहित है। अतः समग्रता में हिन्दू धर्म ही मानव धर्म है। १२ पृष्ठों की यह पुस्तक सीपी में समुद्र के समान है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म के अर्थ और मर्म के जिज्ञासु प्रस्तुत पुस्तक से लाभान्वित होंगे तथा हिन्दू धर्म की विशदता का ज्ञान इस कृति से सहज संभव हो सकेगा।

—डॉ० विश्वरंजन

"We are responsible for what we are, and whatever we wish ourselves to be; we have the power to make ourselves."
—Swami Vivekananda

With Best Compliments From :

JAYANTI METALS

MANUFACTURERS OF VARIOUS TYPES OF METALS CONTAINERS

C/O **Shree Baidyanath Ayurved Bhawan (Pvt.) Ltd.**

Baidyanath Bhawan Road, PATNA—800 001

However various the fashions of his worship be.....yet it is one God who is worshipped under so many names, in all these ways.
—Sri Ramakrishna

With Best Compliments From :

Arun Metal Industries

MANUFACTURER OF SUPERIOR QUALITY METAL CONTAINERS

Standard Mercantile Compound

OPP. : S. B. I. KANKAR BAGH ROAD

PATNA—800 020

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

प्रीति

कफ खांसी नाशक

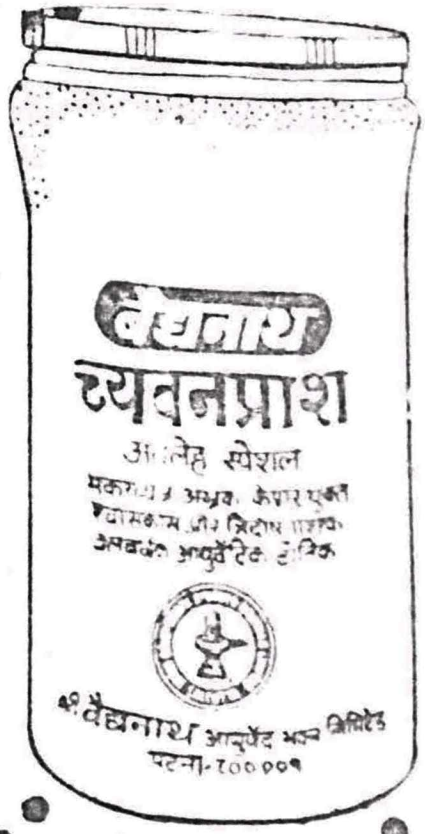

यौवन

दिमागी ताजगी

विलास

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच अत्याधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

स्वामी विवेकानन्दकृत योग पर विख्यात पुस्तकें

ज्ञानयोग :—
वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों का सरल, स्पष्ट तथा सुन्दर रूप से विवेचन। रु० ११.००

राजयोग (पातंजल **योगसूत्र**, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित) :—
प्राणायाम-ध्यान-धारणा द्वारा समाधि-अवस्था की प्राप्ति के विषय में उपयोगी सूचनाएं और मार्गप्रदर्शन। रु० ९.००

कर्मयोग :—
'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' इस आदर्श के अनुसार कर्म किस प्रकार किये जाएं, जिससे वे परम शान्ति का निदान बनें—इस रहस्य का विवरण। रु० ६.००

भक्तियोग :—
भक्ति का सच्चा अर्थ, सच्चे भक्त का जीवन तथा भक्तिमार्ग पर अधिकाधिक अग्रसर होने के लिए आवश्यक गुण तथा साधनाएं—इस विषय का अत्यन्त रोचक एवं मौलिक दर्शन। रु० ४.००

प्रेमयोग :—
प्रत्येक मानव के हृदय में निहित महान् शक्ति प्रेम का जीवन के सर्वोच्च ध्येय भगवत्प्राप्ति के लिए उपयोग किस प्रकार करें, इसका अत्यन्त भावपूर्ण विवेचन। रु० ५.००

* * *

स्वामी विवेकानन्द के दस भागों में उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य में से विशेष महत्त्वपूर्ण व्याख्यानों, प्रवचनों, लेखों, पत्रों, सम्भाषणों एवं कविताओं का प्रातिनिधिक संकलन

विवेकानन्द साहित्य संचयन

मूल्य : १०.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :—

रामकृष्ण मठ

धन्तोली, नागपुर—४४० ०१२

आनन्द अक्टूबर

पारिवारिक मासिक पत्रिका

के सौजन्य से

श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित

श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित